

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

सन्त हृदयोद्गार

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी
महाराज के हृदयस्पर्शी उद्गार

WITH ENGLISH TRANSLATION

Sant Hridayōdgār

क्रान्तिकारी सन्तवाणी : प्राक्कथन

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज एक अभूतपूर्व दार्शनिक सन्त हुए हैं। अध्यात्म-क्षेत्र में वे जितनी गहराई तक पहुँचे थे, उतनी गहराई तक शायद ही कोई दार्शनिक पहुँचा हो! विश्व में उनके समान महान् विचारक मिलना दुर्लभ है! अध्यात्म-जगत् में उन्होंने अनेक नये-नये आविष्कार किए। उनके विचार किसी धर्म, मत, सम्प्रदाय, देश आदि में सीमित न होकर मानव मात्र के लिये हितकारक हैं। परन्तु अभी तक उनके क्रान्तिकारी विचारों का व्यापक प्रचार नहीं हुआ है। इतना अवश्य कह सकते हैं कि जिस समय संसार उनकी विचारधारा को जान लेगा, उस समय अध्यात्म-जगत् में एक क्रान्ति आ जायगी, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

श्री महाराजजी की पुस्तकों की शैली जटिल होने से हर किसी को उनकी बातें सहज समझ में नहीं आतीं। ऐसी स्थिति में उनके साहित्य का प्रचार कैसे हो, उनकी अमूल्य बातें जन साधारण तक कैसे पहुँचे, उनके अनूठे भावों से लोग कैसे परिचित एवं लाभान्वित हों- इस उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक 'क्रान्तिकारी सन्तवाणी' की रचना की गई है। इसमें विषयानुसार ढाई हजार से अधिक अमूल्य वचनों का संग्रह किया गया है। इससे पाठकों को विषयानुसार श्री महाराज जी के विचारों को जानने में सुविधा होगी।

श्री महाराज जी की पुस्तकों में आयी सामग्री इतनी ठोस एवं मार्मिक है कि उसमें से कौन-सी ली जाय और कौन-सी बात छोड़ दी जाय इसका निर्णय करना बड़ा ही कठिन कार्य है! अतः अपनी सीमित बुद्धि से जितना सम्भव हो सका, वचनों का संकलन कर दिया है। यदि पाठकों को यह संकलन उपयोगी लगा हो तो यह श्री महाराज जी की ही कृपा का परिणाम है।

पाठकों से प्रार्थना है कि यदि उन्हें इस पुस्तक में आयी किसी बात को विशेष रूप से समझना हो तो वे मूल पुस्तक का अवलोकन करें।

जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि वे इस पुस्तक में ही सन्तोष न कर लें, प्रत्युत 'मानव सेवा संघ' से प्रकाशित श्री महाराज जी के साहित्य का भी अवश्य अध्ययन करें। कारण कि उनके साहित्य-सागर में न जाने कितने बहुमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं, जिन्हें कोई भी जिज्ञासु खोज कर निकाल सकता है और विशेष लाभ प्राप्त कर सकता है।

इस पुस्तक में जो भी लिखा गया है, वह केवल पढ़ने के लिये नहीं है, प्रत्युत पढ़कर उस पर गंभीरतापूर्वक मनन-विचार करने के लिये है। आशा है, सत्य की खोज में रत जिज्ञासु साधक इस पुस्तक का अध्ययन-मनन करके लाभ उठायेंगे।

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

सन्त हृदयोद्गार Sant Hridayōdgār

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी
महाराज के हृदयर-पर्शि उद्गार

{संघ के प्रकाशन 'क्रान्तिकारी सन्तवाणी' से संकलित}



इस प्रकाशन का पावन ध्येय शरणानन्दजी
महाराज के अकाट्य दर्शन का प्रचार-प्रसार
करना है, जो मानव-मात्र की अमूल्य निधि है ।



As there are more English speaking/reading people in the world (even in India!), Hindi originals with English translation will be very much useful & important. It is hoped that the seekers deeply immersed in the search for truth will benefit from its study and reflection.

मेरे नाथ !

आप अपनी सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतित-पावनी, अहैतुकी कृपा से, दुःखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल एवम् सुखी प्राणियों के हृदय में सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन कर कृतकृत्य हो जायें ।

My Lord!

By Thine Nectarine-Almighty-Purifying-Motiveless Grace, Grant the strength of renunciation To those afflicted with sorrow; And strength of rendering Selfless service To those who are happy; So that they may be released From the bondage of happiness and sorrow, And become blessed by Thy Divine Love!

प्रकाशक :

करनाल मानव सेवा संघ

करनाल-132001 (हरियाणा)

दूरभाष : 94164 67999

www.swamisharnanandji.org

प्रथम संस्करण : सन् 2018 ई.

मूल्य : ₹ 15

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

○ श्री प्रेमानन्दजी (खेडब्रह्मा) Pincode : 383255

Phone : 02775-220774, Mobile : 93279 06279

○ श्री भावेशभाई तन्ना (जूनागढ़) Pincode : 362001

Mobile : 98244 77366

○ धार्मिक साहित्य सदन

बुलियन बिल्डिंग, हल्दियोंका रास्ता

जौहरी बाजार, जयपुर-302003 (राजस्थान)

Phone : 0141-257 0602, 402 4444

E-mail : shrihari_jaipur@yahoo.co.in

○ श्रीहरि: भण्डार

श्रीजगद्गुरु आश्रम

श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिर के पास

जयपुर-302002

Mo.(Whatsapp) : 93141 77033



सन्त हृदयोद्गार

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज के हृदयस्पर्शी उद्गार)

Profound Aphorisms of a Revolutionary Saint

1. अगर आप भगवान्को मानते हैं, तो उस मान्यताका परिचय हमारे आपके जीवनसे हो, केवल विचारोंसे नहीं। हमारा जीवन बता दे कि हम भगवान्को मानते हैं।

If we accept God, then this belief should be expressed in and through our life, and not just in our thoughts. Our life should be a living proof of our acceptance of God.

2. बहुत-से लोग हैं जो प्रभुको मानते हैं। बहुत-से लोग हैं जो संसारकी वास्तविकताको जानते हैं। महत्त्वकी बात यह है कि उस जाने हुएका प्रभाव कितना है जीवनमें; उस माने हुएका प्रभाव कितना है जीवनमें।

There are many who “believe” in God; there are many who “know” the reality/truth of the world. The important thing is how much of that “belief” and “knowledge” gets expressed in their living [or how much “effect” that “belief” and “knowledge” have on their “life”].

3. भगवान्का स्मरण करनेसे जीवका कल्याण होता है— यह बात भी हम अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी मन भगवान्में नहीं लगता, तो इससे बढ़कर और नास्तिकता क्या होगी?

Even when we also know this very well that remembering God, leads to salvation or welfare of life of sentient beings (*jīva ka kalyān*), still our heart does not abide in God what



would be greater ungodliness than this! What is surprising is that despite being highly unwise and ungodly, we consider ourselves godly and wise.

4. वस्तुविशेषमें भगवद्बुद्धि होना कोई कठिन बात नहीं है। पर यह अधूरी आस्तिकता है। पूरी आस्तिकताका तो अर्थ यह है कि भगवान्से भिन्न कुछ है ही नहीं। अभी भी नहीं है, पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होगा।

It is not that difficult to have godly-feeling (*bhagavad-buddhī*) in a specific thing [or object]; however, this is incomplete godliness. Absolute godliness means to know that there is nothing apart from God there is nothing apart from God even in the present, there was nothing apart from God even in the past, and there will be nothing apart from God even in the future.

[*Vāsudevaḥ Sarvam iti; Sarvam Khalvidam Brahma; Siyā-Rām meya sab jag jāni; Sab Gobind hae, Sab Gobind hae...*]

5. गहराईसे देखिये, किसीका होना कुछ अर्थ नहीं रखता, जबतक कि उससे अपना सम्बन्ध न हो, और किसीसे भी सम्बन्ध उस समयतक नहीं होता, जबतक कि उसकी आवश्यकता न हो।

Think deeply: No one's being/existence has any meaning or importance for us until it has any relation to us; and there is no link/relation with someone until we “need” them.

Translator's Note: Swāmī ji is pointing out an important fact of life here: that all worldly relations are founded upon self-interest. [*Swārath-mīta sakal jag māhin; supnehu Prabhu parmārath nahin; Sur narah muni sab ki yehī rītī, swārath lāg karein sab prītī.* Goswāmī Tulsīdāsji]



6. अगर आपको उनके बिना अनुकूलता प्रिय है, तो वह उसी प्रकारकी है कि एक सुन्दर कमरा सजा है और आप दोस्तके बिना हैं; एक सुन्दर स्त्री शृंगार करे और पतिसे वंचित रहे, या शरीर आत्मा-रहित हो। आस्तिकवादका न होना जीवनमें अकेले पड़े रहनेके समान है।

If you like favorableness (*anukūltā*) without God, then this is like having a beautiful room that is decorated but you are without a friend; or it is like a beautiful woman who decorates herself with ornaments but does not have a husband; or like the body without the soul. Similarly, lack of godliness is like remaining lonely in life.

7. कुछ न करनेसे जीवन अपने लिये उपयोगी हो जाता है और सही करनेसे जीवन जगत्के लिये उपयोगी हो जाता है।

By not “doing” anything [for ourselves], our life becomes useful for us. And by “doing” right, our life become useful for the world.

Note: Swāmijī used to use the words “doing” (*prishram*) and “non-doing” (*aprayatan*) or effortlessness in very special way. For Swāmijī, “doing” meant “*sevā*” or service. And non-doing (*vishrām*) meant repose or abidance in self. Pātānjālī has called it to be the end, the fruit, of all *Yoga*: When the Seer gets established in the Self (*drasta ka svarūpa mein sthit honā*, says Swāmijī). He used to say, “*para-āshreyey chhod do, prishram chhod do:*” Give up reliance on others and give up vain doing. *Apnāāpān to milā huwā hee hae*: Our own self is ever-realized.

He used to say, if you want to do something, do the service. If you want to know/discover something, know/discover yourself. Through selfless service and



self-discovery, one comes to the love of God. *Saṁsār ki sevā karo, khōj apni karo, aur Bhagavān se prem karo:* Serve the world, discover yourself, and love the Lord!

8. अपने लिये कुछ करना है— यह असत्का संग है।
To do something for oneself, this is to court [or live with] untruth. [Alternatively, 'that I need to do something for myself to have this (need) is to live with untruth.']
9. यह मान लेना कि हम जब कुछ करेंगे, तभी कुछ मिलेगा, बिना किये कुछ नहीं मिलता है— इस धारणामें आस्था करना मानवको अविनाशी जीवनसे विमुक्त करना है।
To accept that when we “do” something, only then we will get something; no pain, no gain; to believe in this principle, is to be deprived of the eternal life.
10. जो दिन-रात अपने अहम्के ही महत्त्वको बढ़ाता रहता है, दुनिया उसका मुँह देखना पसन्द नहीं करती ईमानदारीसे।
Truthfully speaking, he who is constantly busy in promoting his self-importance, the world does not like even to see his face.
11. ‘सबहिं नचावत राम गोसाईं’— यह उस भक्तके हृदयकी पुकार है कि जिसका अहंभाव मिट गया हो।
The Lord makes everyone go around (like a puppet) this is the heart cry of that devotee whose ego has been effaced or annihilated.¹

¹This observation applies only to those who have completely surrendered themselves to God, i.e., who are *sharnāgata*. They ascribe all of their actions to the Lord only for their separative ego has been completely annihilated.



12. हमें अपनेमेंसे 'मैं सर्वाहितैषी हूँ', 'मैं अचाह हूँ' अथवा 'मुझे अपने लिये संसारसे कुछ नहीं चाहिये'— यह अहंभाव भी गला देना चाहिये। यह तभी सम्भव होगा, जब सर्वाहितकारी प्रवृत्ति होनेपर भी अपनेमें करनेका अभिमान न हो और चाहरहित होनेपर भी 'मैं चाहरहित हूँ' ऐसा भास न हो। कारण कि अहंभावके रहते हुए वास्तवमें कोई अचाह हो नहीं सकता; क्योंकि सेवा तथा त्यागका अभिमान भी किसी रागसे कम नहीं है।

We should purge even such egoistic-feelings from our heart: that "I am everyone's well-wisher;" that "I am desireless," and that "I do not need anything from the world for myself." It is possible only when we do not have the "pride of doership" in us even when we actively engage in the welfare of all; and when remaining desireless, there is not even the slightest notion that "I am desireless." It is because while ego remains in place, no one can be really "desireless." *It is because the pride of service and sacrifice is no less binding than any other form of attachment.* [emphasis added]

13. अगर तुम दूसरोंके लिये बोलते हो, दूसरोंके लिये सुनते हो, दूसरोंके लिये सोचते हो, दूसरोंके लिये काम करते हो तो तुम्हारी भौतिक उन्नति होती चली जायगी। कोई बाधा नहीं डाल सकता। अगर तुम केवल अपने लिये सोचते हो तो दरिद्रता कभी नहीं जायगी।

If you speak for others, hear for others, think for others, and work for others, then you will keep progressing in



the world. Nobody can stop this. If you only think for yourself, deprivation/destitution will never leave you!

14. मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि हम सबका वर्तमान हम सबके विकासमें हेतु है; चाहे दुःखमय है वर्तमान, चाहे सुखमय है।

I have arrived at this conclusion: That everyone's present condition contributes to their progress whether the present condition is sorrowful or joyful.

15. सबसे बड़ा उपदेशक कौन है? जो जीवनसे उपदेश करता है। वह सबसे बड़ा वक्ता है, सबसे बड़ा पण्डित है, सबसे बड़ा सुधारवादी है। और सबसे घटिया कौन है? जो परचर्चा करके उपदेश करता है। कभी व्यक्तियोंकी चर्चा, कभी परिस्थितियोंकी चर्चा।

Who is the greatest preacher? One who teaches through life, one who lets his life speak! He is the greatest speaker, the greatest learned person, and the greatest reformer. And who is the lowermost preacher? He who preaches through others sometimes discussing people, and sometimes life-conditions.

16. कर्तव्यनिष्ठ होनेसे ही कर्तव्यपरायणता फैलती है, समझानेसे नहीं, उपदेश करनेसे नहीं, शासन करनेसे नहीं, भय देनेसे नहीं, प्रलोभन देनेसे नहीं।

Steady abidance in actions (*kratvya-nishthā*) begets conviction of actions or commitment in actions (*kratvya-prāyantā*); and this is not achieved through explanations, nor through preaching, nor through control, nor by causing fear, nor even by providing enticements.



17. जहाँतक संसारकी सत्यता और सुन्दरताका भास है, वहाँतक काम-ही-काम है।

As long as there is false sense of reality and fascination for the world, there are endless desires.

18. जब साधक प्राप्त विवेकके द्वारा शरीरके वास्तविक स्वरूपका दर्शन कर लेता है, तब शरीरकी सत्यता और सुन्दरता मिट जाती है। उसके मिटते ही कामका अन्त हो जाता है।

When the spiritual aspirant, by using discriminative intellect, realizes the essential nature of the body, then the reality and attractiveness of the body vanishes. With this realization, craving/desire ends.

19. जो कुछ नहीं चाहता, वही 'प्रेम' कर सकता है और जो कुछ नहीं चाहता, वही 'मुक्त' हो सकता है।

Only he who does not want anything can "love." And only he who does not want anything can be "free."

20. मेरा अपना अबतकका अनुभव है कि जो हम चाहते हैं, वह न हो, इसीमें हमारा हित है। हमने तो जबतक अपने मनकी मानी है, अपने मनकी बात की है, तो सिवाय पतनके, सिवाय अवनतिके हमें तो कुछ परिणाममें मिला नहीं। मैं आपके सामने अपनी अनुभूति निवेदन कर रहा हूँ, और इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो अपनी चाही मत करो। प्रभुकी चाही होने दो। प्रभु वही चाहते हैं, जो अपने-आप हो रहा है।

It has been my experience so far that our true spiritual welfare obtains when what we want does not happen. Whenever I have followed my will, it has always resulted in downfall, in regress. I am humbly sharing my



experience with you. If you want to benefit from it, do not do your heart's desire/will. Let God's will prevail. *What is happening on its own is God's will.*

21. किसी भी प्रकारकी कामना न रखनेवाला 'राजाओंका राजा'; जो शक्ति प्राप्त है उससे कुछ कम कामना रखनेवाला 'धनी'; शक्तिके समान कामना रखनेवाला 'मजदूर'; शक्तिसे अधिक कामना रखनेवाला 'कंगाल' है।

One who does not have any desire, is the "king of kings;" one who desires less than his given capacity, is "rich;" he whose desires are equal to his capacity is a "laborer;" and one who has desires greater than his capacity is a pauper.

22. कामना ही क्रोधमें हेतु है, चाहे वह शुभ कामना हो अथवा अशुभ। यद्यपि अशुभसे शुभ श्रेष्ठ है, परन्तु शुभ कामना भी दुःखका कारण है।

Desire is the root cause of anger, whether it is an auspicious desire or an inauspicious desire. Although auspicious desire is superior to inauspicious desire, still auspicious desire also causes sorrow.

Note: All desires lead to anxiety and rob us of our natural peace of mind. Above all, all desires are "dependence-causing" and he who is dependent upon any person, thing, or situation is not really free.

23. भगवान् इच्छा पूरी नहीं करते, वे तो भक्तको इच्छा-रहित करते हैं।

God does not fulfill [devotee's] desires; God verily makes the devotee desire-free.



24. इच्छाओंके रहते हुए प्राण चले जायँ तो 'मृत्यु' हो गयी और प्राण रहते हुए इच्छाएँ चली जायँ तो 'मुक्ति' हो गयी।

If you breathe your last while the desires still remain, it is called "death;" if you become desire-free before death, it called Liberation ("*Mukti*").

25. जब अपने मनकी इच्छाके विपरीत हो, तब साधकको समझना चाहिये कि अब प्रभु अपने मनकी बात पूरी कर रहे हैं।

If things happen against our will, then the spiritual aspirant should understand that now God is fulfilling His heart's desire.

26. यदि भगवान्के पास कामना लेकर जायँगे तो भगवान् संसार बन जायँगे और यदि संसारके पास निष्काम होकर जायँगे तो संसार भी भगवान् बन जायगा। अतः भगवान्के पास उनसे प्रेम करनेके लिये जायँ और संसारके पास सेवा करनेके लिये, और बदलेमें भगवान् और संसार दोनोंसे कुछ न चाहें तो दोनोंसे ही प्रेम मिलेगा।

If we go to God with our desires, then God will become worldly; but if we go to the world selflessly, then even the world will become godly. Therefore, go to God to *love* God and go to the world to *serve* the world. In other words, go to God for the sake of loving God and go to the world for the sake of serving the world; and do not ask anything in return either from God or from the world. Then you will receive love from both.

27. परमात्मासे यदि कुछ भी माँगेंगे तो आपका सम्बन्ध परमात्मासे तो रहेगा नहीं, जो हम माँगेंगे, उससे हो जायगा।

If you will ask anything from God, then you won't have



any real relation with God; rather, the relation will be with what you have asked for (and not with God).

28. अपनेको जो चाहिये, वह अपनेमें है।

Whatever we need for ourselves, we already have that within us.

29. अगर आप यह मानते हैं कि सत्यकी जिज्ञासाके साथ-साथ असत्की कामना भी है, तो कहना पड़ेगा कि सत्यकी जिज्ञासाके नामपर किसी असत्का ही भोग करना चाहते हैं।

If you feel that along with your search for the Real there is also an accompanying craving for the unreal, then it needs to be said that you want to have the pleasure of indulgence in the unreal under the pretext of searching for the Real.

30. हमने अपनेमें जो चाह पैदा कर ली है, यही हमारे और प्रभुके बीचमें मोटा परदा कहो, चाहे गहरी खाई कहो, बन गयी है।

The need that we have created in ourselves, this very need has become, say, a thick veil or a deep chasm between God and us.

31. उनकी अहैतुकी कृपा आवश्यक वस्तु बिना माँगे ही दे देती है और अनावश्यक माँगनेपर भी नहीं देती। इस दृष्टिसे कुछ भी माँगना अपनी बेसमझीका परिचय देना है और उनके मंगलमय विधानका अनादर करना है।

God's gratuitous Grace grants what is necessary for us even when unsought; it does not grant us what is not essential for us even when we ask for it. According to this understanding, to ask for anything is to show our imprudence and dishonor God's Benevolent Order or Divine Dispensation.



32. अगर इन्द्रियाँ संसारकी ओर जाती हैं तो अपराध क्या है उनका? संसारकी जातिकी ही हैं। लेकिन आप क्यों संसारको पसन्द करते हो जी, यह बताओ? आप तो भगवान्की जातिके हैं।

If our senses run towards the world, what is their fault? Our senses are of the worldly nature. But tell me, why do you like the world? You are of God's class.

33. अपने बलका अभिमान छोड़कर साधक जब यह विकल्प रहित दृढ़ विश्वास कर लेता है कि मुझपर भगवान्की कृपा अवश्य होगी, मैं उनका कृपापात्र हूँ, उसीसमय उसपर भगवान्की कृपा अवश्य हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

When the spiritual aspirant gives up pride in his strength and develops the volition-less, firm faith (*sankalpa-rahit dridha vishvās*) that God's Grace will surely bless me, that I am the recipient of God's Grace at that very time, the aspirant is blessed with God's Grace. There is no doubt about it.

34. आप सच मानिये, उस अनन्तकी अहैतुकी कृपा निरन्तर योगकी, ज्ञानकी, प्रेमकी वर्षा कर रही है। परन्तु दुःस्वकी बात तो यह है कि हम उस कृपाके द्वारा जो वर्षा हो रही है, उसका उपयोग नहीं कर पाते। आप कहें, कैसे उपयोग नहीं कर पाते? क्या हम थोड़ी-थोड़ी देरके लिये शान्त होते हैं? यदि शान्त हुए होते तो आपको स्वयं अनुभव होता कि प्रभुकी कृपाशक्ति योग दे रही है, प्रेम दे रही है, ज्ञान दे रही है और हम उससे तद्रूप होकर कृतकृत्य हो रहे हैं।



Know this to be true that the perennial Grace of the Infinite (God) is constantly being showered in terms of service (*yōg*), knowledge (*jñāna*), and love (*prem*) of God. But the sad thing is that we are not able to make good use of God's Grace. You will ask, 'how are we not able to utilize God's Grace?' Do we ever sit peacefully even for a little while? If we did, we would have experienced this in ourselves that God's blessed Grace is providing us *Yōg*, *Prem*, and *Jñāna*² constantly and, by being one with it, we are being ever-blessed.

35. भूतकालके दोषोंके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषतामें दोषका आरोप करना अपने प्रति अन्याय है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भूतकालकी भूलका परिणाम परिस्थितिके रूपमें अपने सामने नहीं आयेगा, अवश्य आयेगा; किन्तु भूतकालके दोषके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषतामें दोषका आरोप करना दोषयुक्त प्रवृत्तिको जन्म देना है।

To impose past faults on the impeccability of the present is an injustice towards oneself. It does not mean that

²The words *Yōg*, *jñāna*, and *Prem* have been left untranslated because the translator feels that the special inflection/meaning intended by Swāmijī by using these words in this context cannot be conveyed by their equivalent terms in English. Swāmijī used to use these terms in a very special sense. For Swāmijī, *Yōg* meant *sevā* (service), *jñāna* meant self-discovery/realization, and *Prem* meant love of God. In one of his pravachans (discourse- 10A) he clarifies the concept of *sevā* (service) as follows:

1. *Service of the world/society*: When we give up doing evil by thought, word, and deed
2. *Service of the self*: When we give up attachment with the fruits of our good actions/deeds
3. *Service of God*: When we accept God to be our own and cultivate God's remembrance and love



results of the past mistakes will not manifest by way of situations/circumstances in the present; they surely will. But to impose past faults on the impeccability of the present gives birth to a fault-some tendency or culpability.

36. पूजा-प्रार्थना सब परमात्माके साथ करनेवाली बात है। गुरु परमात्माका बाप हो सकता है, परमात्मा नहीं। हाँ, गुरुवाक्य ब्रह्मवाक्य हो सकता है। गुरु श्रद्धास्पद हो सकता है, प्रेमास्पद नहीं। व्यक्तिको अगर परमात्मा मानना है तो सबको मानो। गुरु साधनरूप हो सकता है, साध्यरूप नहीं।

Devotion and prayer are all offerings/services for God. *Guru*, the spiritual preceptor, can be god's father but cannot be God. Yes, *guru's* words can be the Great Sayings of the *Brahma*. The *guru* can be the object of faith but not an object of love. If you want to accept a person as God, then accept everyone as God. The *guru* can be the 'means' to the spiritual practice but cannot be the 'end' or goal of the spiritual practice.

37. आज उपदेष्टा गुरुकी लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि कोई ऐसा वीर पुरुष या वीर महिला हो, जो किसी उपदेशको स्वीकार कर सके।

Today there is not even a slightest need of a teaching *guru*. What is needed is a brave man or a woman who can accept/embrace the teachings.

38. दुनियाका बड़े-से-बड़ा गुरु, बड़े-से-बड़ा नेता, बड़े-से-बड़ा राष्ट्र जो काम नहीं कर सकता आपके साथ, अगर आप चाहें तो अपने साथ कर सकते हैं।



What world's greatest *guru*, greatest leader, greatest nation cannot do (for you), you can, if you so desire, do it for yourself.

39. शास्त्रोंमें नेता या गुरु बननेको पतनका हेतु माना है। इससे सिद्ध होता है कि यह काम महापुरुषोंके ही उपयुक्त है। साधकको इस बख्सेमें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

In the scriptures, becoming a *guru* or a leader has been stated as the cause of one's downfall. This proves that this task (i.e., to be a *guru* or a leader) is appropriate for great-souls only. A spiritual aspirant should stay away from this trouble.

40. वास्तविक गुणोंका प्रादुर्भाव होनेपर उनका भास नहीं होता। अतः जबतक गुणोंका भास हो, तबतक समझना चाहिये कि गुणोंके स्वरूपमें कोई दोष है।

Usually one is not aware of [evil] manifestation of one's essential qualities. Therefore as long as there is consciousness of one's good qualities, one should understand that some fault is still present [in him].

41. जब प्राणी अपनी प्रसन्नता किसी औरपर निर्भर कर लेता है, तब उसका चित्त अशुद्ध हो जाता है, जिसके होते ही अनेक दोषोंकी उत्पत्ति अपने-आप होने लगती है।

When a person becomes dependent upon another for his joy and pleasure, his mind becomes impure. And many defects start arising in a mind that is impure.

42. यह सभी जानते हैं कि गहरी नींदमें प्राणी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और व्यक्तिका त्याग स्वभावसे ही अपना लेता है और उस अवस्थामें किसी प्रकारके दुःस्वका अनुभव नहीं करता,



अपितु जाग्रत्-अवस्थामें यही कहता है कि बड़े सुस्वप्ने सोया। प्राकृतिक नियमके अनुसार कोई भी स्मृति अनुभूतिके बिना नहीं हो सकती। गहरी नींदमें कोई दुःख नहीं था, यह अनुभूति क्या साधकको वस्तु, व्यक्ति आदिसे अतीतके जीवनकी प्रेरणा नहीं देती? अर्थात् अवश्य देती है। गहरी नींदके समान स्थिति यदि जाग्रतमें प्राप्त कर ली जाय तो यह सन्देह निर्मूल हो जायगा और यह स्पष्ट बोध हो जायगा कि वस्तु, व्यक्ति आदिके बिना भी जीवन है और उस जीवनमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है।

It is known to everyone that during deep sleep, we spontaneously relinquish our dearest-most object or person. And we do not experience any sorrow during deep sleep; rather, upon waking up, we recall how peacefully we slept. According to nature's law, one cannot remember something without its experience. That there was no sorrow during deep sleep-shouldn't this experience inspire the spiritual aspirant for a peaceful existence that is beyond any object or person? Yes, it does for sure....If one is able to attain this *sleep-like* state during waking state, then undoubtedly, one will clearly realize that there is an existence beyond the façade of objects and persons and in that existence there is nothing lacking whatsoever.

43. साधकको विश्वास रखना चाहिये कि जीवन स्वयं अपनी रक्षा करता है। यदि जीवन शेष है तो जीवनके साधन स्वयं प्राप्त हो जायँगे।

The spiritual aspirant should trust that life protects itself by itself. If the term of life still remains, then the means (of subsistence) for life will obtain spontaneously.



44. संसारकी सहायतासे जबतक जीवन मालूम होता है, तबतक तो मृत्युके ही क्षेत्रमें रहते हैं। शरीरके रहनेका नाम जीवन नहीं है। शरीरसे सम्बन्ध टूटनेके बाद जीवनकी प्राप्ति होती है।

As long as life is sensed with the help of the world, one lives in the domain of death. Existence does not mean that there is the body.... Rather, real existence is achieved when the association/identification with the body-consciousness gets severed.

45. जिसको आप जानना और समझना कहते हैं, वह तो सीखना है। आपने सीखा है, सुना है। न आपने जाना है, न समझा है। जाननेका अर्थ यह है कि जब आप ठीक-ठीक जान लें कि सचमुच इतने बड़े संसारमें मेरा कुछ है ही नहीं और मुझे कुछ नहीं चाहिये।

What you call “knowing” and “understanding,” that is information only. You have been informed and you have heard; but neither you have truly “known” nor “understood.”...The true meaning of “knowing” is this: That you have properly understood that, in reality, in this whole vast world, *nothing is verily mine*, and that *I do not need anything*.

46. जो साधक अपने ज्ञानका आदर नहीं करता, वह गुरु और ग्रन्थके ज्ञानका भी आदर नहीं कर सकता। जैसे, जो नेत्रके प्रकाशका उपयोग नहीं करता, वह सूर्यके प्रकाशका भी उपयोग नहीं कर पाता।

A spiritual aspirant, who does not respect his own knowledge, cannot respect the knowledge received from



a *guru* or a scripture. For example, one who does not make use of the light of his eyes will not be able make use of the sunlight either.

47. कर्म ज्ञानका साधन नहीं होता, बल्कि भोगका दाता होता है।
Action cannot be the means to knowledge; action is the granter of indulgence in the fruits of actions.
48. एक शरीरको लेकर कुटियाके अन्दर बन्द कर दिया और हम त्यागी हो गये। तो मैं कहूँगा कि ऐसे तो तुम्हारे बाप भी त्यागी नहीं हो सकते। यदि पूछो, क्यों त्यागी नहीं हो सकते? तो कहना होगा कि आपने अपना {अहम्का} तो त्याग किया नहीं। भाई मेरे, अगर त्याग करना हो तो अपना त्याग करो। और प्रेम करना हो तो सभीको प्रेम करो। और यदि अपने-आपका त्याग नहीं कर सकते तो आप संसारका कभी त्याग नहीं कर सकते।

By shutting up your body in a hut, you believe you have become a renunciate? I do not think so. If you ask, why you are not considered a renouncer, then I have to say: it is because you have not yet given up your ego. My dear, if you have to renounce anything, renounce your ego. If you want to love, love everyone. And *if you cannot renounce yourself (or your ego), you will never be able to renounce the world either.*

49. केवल गृहत्याग करने एवं वस्त्र रंगनेमात्रसे किसीको योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह त्याग नहीं वरन् त्यागके भेषमें अपने कर्तव्यसे पलायन करना है।

Nobody attains communion, knowledge, love (*Yōg-Bōdh-Prem*) by merely giving up home or donning robes. This



is not called renunciation, but running away from one's duty under the guise of renunciation.

50. प्रिय-से-प्रिय वस्तु तथा व्यक्तिका त्याग गहरी नींदके लिये भला किसने नहीं किया ?

Who does not relinquish the dearest-most object and person during deep sleep?

51. ईश्वर, धर्म और समाज किसीके ऋणी नहीं रहते। जो इनके लिये त्याग करते हैं, उनका ये अवश्य निर्वाह करते हैं।

God, religion, and society remain indebted to no one. The one who makes sacrifice for them, they certainly provide for him or her.

52. त्याग हो जानेपर त्यागका भास नहीं रहता ; क्योंकि त्यागकी स्मृति अथवा उसका अस्तित्व तभीतक प्रतीत होता है, जबतक त्याग होता नहीं।

When the sacrifice (*tyāga*) has really been made, there remains no consciousness of it; for the memory or reality of sacrifice is felt only until one has not made the sacrifice.

53. इन तीन बातोंसे सारे जीवनकी समस्याएँ हल हो जाती हैं—
1) मुझे कुछ नहीं चाहिये, 2) प्रभु अपने हैं, 3) सब कुछ प्रभुका है। यही जीवनका सत्य है। इसको स्वीकार करनेसे उदारता, स्वाधीनता और प्रेम प्राप्त होगा।

All the problems of life can be solved by these three things: 1. I do not need anything 2. I belong to God [as] 3. Everything belongs to God. This is truth of life. Its acceptance leads to benevolence, liberation and love.



54. ध्यान किसीका नहीं करना है। किसीका ध्यान नहीं करोगे तो परमात्माका ध्यान हो जायगा। और किसीका ध्यान करोगे तो वह फिर किसी औरका ही ध्यानमात्र रह जायगा।

You do not have to meditate on anything. When you do not meditate on anything, meditation on God will happen [spontaneously]. When you will meditate on something else, it will just be a mere meditation of something.

55. अगर परमात्माके माननेवालोंको परमात्माकी याद नहीं आती, और करनी पड़ती है— यह कोई कम दुःखकी बात है? यह कम आश्चर्यकी बात है? अरे, मरे हुए बुजुर्गोंकी याद आती है आपको, गये हुए धनकी याद आती है आपको! तो परमात्मा इतना घटिया हो गया कि उसकी याद आपको करनी पड़े? याद नहीं आती है इसलिये कि आप उसे अपना नहीं मानते।

It is a matter of no little concern if the person who believes in God does not miss God and has to [make effort to] remember God. Is it a matter of little distress? Well, you remember your ancestors who have passed away; you also remember the wealth that has been lost. Has God become so lowly for you that you have to make effort to remember Him?*You do not miss God because you do not consider Him your very own.*

56. जिस समय अपने दोषका दर्शन हो जाय, समझ लो कि तुम जैसा विचारशील कोई नहीं। और जिस समय परदोष-दर्शन हो जाय, उस समय समझ लो कि हमारे जैसा कोई बेसमझ नहीं।



There is no one as thoughtful as a person who is able to notice his own faults. There is no one as unwise as a person who notices the faults of others.

57. अपने दोषका दर्शन अपनेको निर्दोष बनानेमें समर्थ है और परदोषदर्शन अपनेको दोषी बनानेमें हेतु है।

Seeing one's own faults enables one to become faultless; and seeing others' faults makes one faulty.

58. भगवान्के खिलाफ जो आवाज उठती है न, वह तर्कसे नहीं उठती है। वह आवाज उठती है भगवान्को माननेवालोंके दुश्चरित्रसे, और कोई बात नहीं है। भगवान्को माननेवाले अगर ठीक आदमी हों तो भगवान्के खिलाफ कोई बोल ही नहीं सकता।

The voice raised against God does not originate in logic; it originates due to no reason other than the bad character of the believers of God. If those who believe in God are of good character, no one can dare speak against God.

59. परमात्माको 'अभी' न मानना बड़ी भारी भूल होगी, 'अपना' न मानना उससे बड़ी भूल होगी, और 'अपनेमें' न मानना सबसे बड़ी भूल होगी।

Not to accept God "right now" would be a great mistake; not to accept God as "one's very own" would be a greater mistake; and not to accept God "in one's own self" would be the greatest mistake of all.

60. प्रभु अपनेमें हैं, अभी हैं और अपने हैं— इससे परमात्मा मिल जायगा।

God is within us; God is right now; and God is our own— with this understanding, one attains God.



61. याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा भी अपना है— ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं। जबतक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तबतक तो मुस्वसे कहते हुए भी हमने सच्चे हृदयसे भगवान्को अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है।

Remember, “something else is ours” as well as “God is ours” these two things cannot co-exist. As long as we consider something else (other than God) as our own, until then, despite our lip-service, we do not really consider God as our own with our true heart. This is how you recognize the true faith in God.

62. सर्वसमर्थ साधकका भूतकाल नहीं देखते। उसकी वर्तमान वेदनासे ही करुणित हो अपना लेते हैं।

The Omnipotent God does not pay attention to the past of the spiritual aspirant. God embraces the aspirant moved by aspirant's heart-cry in the present.

63. वे अपनी वस्तुको सदैव देखते रहते हैं। उन्होंने कभी भी तुम्हें अपनी आँखसे ओझल नहीं किया। साधक भले ही उन्हें भूल जाय, पर वे नहीं भूलते। जिसकी जो वस्तुएँ हैं, उसे वह देखता ही है, सम्भालता ही है। अपनी रचनासे क्या रचयिता अपरिचित होता है? कदापि नहीं।

God always keeps beholding us. God has never had you out of His sight. The spiritual aspirant might forget God, but God never forgets. One always takes care of one's own thing and always looks after it. Could the Creator be unaware of its own creation? Never ever!



64. भगवान्का कोई एक ठिकाना नहीं है। ऐसा नहीं है कि संसार अलग हो, तत्त्वज्ञान अलग हो, भक्ति अलग हो और भगवान् अलग हो। सब मिलकर जो चीज है, उसीका नाम भगवान् है।

There is no one place for God to stay. It is not that the world, Knowledge of Reality (Tattva-Jñāna), Devotion (Bhakti), and God are separate entities. The sum total of everything that there is, is called God.

65. जो किसीका नहीं तथा जिसका कोई नहीं, उसके भगवान् अपने-आप हो जाते हैं; क्योंकि वे अनाथके नाथ हैं।

Who is not anyone's and whose no one else is, God automatically takes such person as one of His own, since He is Lord of the destitute.

66. भगवान्के होकर 'भगवान्का स्वरूप क्या है?' यह प्रश्न क्या अर्थ रखता है? गहराईसे देखिये, प्यासने कभी नहीं पूछा, 'पानी क्या है?' भूखने किसीसे नहीं पूछा, 'भोजन क्या है?' पानी पाकर प्यास तृप्त हो गई, भोजन पाकर भूख तृप्त हो गई। तृप्ति होनेपर पानी और प्यासकी भिन्नता तथा भूख और भोजनकी भिन्नता शेष नहीं रहती।

Does the question "what is God's real form/nature" have any meaning when one has surrendered unto God? Think deeply about it, the thirst has never inquired "what is water?" Hunger has never inquired "what is food?" When you get water, the thirst gets quenched; when you get food, the hunger gets satisfied. After gratification, there remains no more separation between water and thirst and food and hunger.



67. जब हम अपनेमें शरीरभावका अभिनय स्वीकार करते हैं, तब हमारे प्यारे विश्वरूप होकर लीला करते हैं। शरीर होकर किसी भी खिलाड़ी (प्राणी) ने विश्वसे भिन्न कुछ नहीं जाना। हम शरीर बनकर तो केवल उनको विश्वरूपमें ही देख सकते हैं।

When we accept in ourselves that we are playing a role, then our Beloved (God) conjures up the Divine Play by *becoming* the world. No one has known anything separate from the world by remaining as body-consciousness. By remaining a body-entity, we can only see Him in the form of the world.

68. ईश्वर मानवकी स्वाधीनता छीनना नहीं चाहता, इसलिये मानव जबतक स्वयं अपनी ओरसे ईश्वरके सम्मुख नहीं होता, तबतक ईश्वर उसके पीछे ही रहता है।

God does not want to take away human being's freedom; therefore, until human being turns towards God on its own, God verily remains in the background.

69. हमें उसको प्राप्त करना है कि जिसका हम त्याग कर ही नहीं सकते।

We have to realize That whom we can never ever abandon.

70. संसार परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक नहीं है, बल्कि सहायक है। उसका जो हम सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, वही बाधक है।

The world is not a hindrance in the realization of God; rather, it is helpful. However, the "relationship" that we accept with the world is the real hindrance.



71. जगत्की सत्ता स्वीकार करके भगवान्को प्राप्त करना चाहते हैं? नहीं कर सकते। होगा क्या? भगवान् आयेंगे, लेकिन आप कहेंगे कि मेरी स्त्री बीमार है, अच्छी हो जाय। भगवान्को प्राप्त करना चाहते थे कि स्वस्थ स्त्रीको देखना चाहते थे? जरा सोचिये।

You want to attain God while accepting the reality of the world; it cannot be done. What will happen is this: God will come but you will say that my wife is ill; may she be well. Did you want to attain God or you wanted to see a person healthy? Kindly think about it!

72. अगर आप कभी भी यह अनुभव करें, कभी भी मानें कि शरीर अलग हो जायगा, तो अभी मान लीजिये कि अभी अलग है। और इस बातमें विश्वास करें कि कभी भी परमात्मा मिल जायगा, तो अभी मान लीजिये कि अभी पास है, अभी भी मिला है।

If you are ever able to experience this or ever able to accept this, that the body will one day get separated (from you) then accept this right now that it is already separate. And if you believe that God will be attained [one day] then accept this, that God is with you right now; that God is attained right now.

73. परमात्मासे आप तो मिल सकते हैं, लेकिन शरीर द्वारा नहीं मिल सकते। आप अपने द्वारा मिल सकते हैं। हाँ, शरीरद्वारा परमात्माकी सृष्टिका कार्य कर सकते हैं।

You can sure meet with God, but not with the body-entity. You can meet God with your own "self." Yes, you can surely serve God's creation with your body-entity.



74. भगवान् क्या कोई खेती है कि आज बोयेंगे तो कल उपजेगा और परसों मिलेगा? क्या भगवान् कोई वृक्ष है, जिसे आज लगायेंगे तो बारह वर्षमें फल लगेगा? भगवान् ऐसी चीज नहीं है। भगवान् तो वर्तमानमें भी ज्यों-का-त्यों मौजूद है।

Is God a crop that you sow today that will sprout tomorrow and ripen the day after? Is God a tree that you plant today that will bear fruit 12 years later? God is not such a thing. God is ever-present now, as ever.

75. सत्यका मार्ग इतना तंग है कि उसपर आप अकेले ही जा सकते हैं। इसलिये इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके साथ रहनेका मोह छोड़ दें। इनके साथ रहकर आप उस तंग रास्तेपर नहीं चल सकते। अकेले होनेपर मार्ग अपने-आप दिखाई देगा।

The path of Truth is so narrow that you can only walk on it alone. Therefore, give up the delusion of being identified with senses, mind, intellect etc. You cannot walk on that narrow path while remaining identified with these. When one becomes alone (that is, when one dis-identifies with one's senses, mind, and intellect), the path becomes visible on its own accord.

76. जब आप अकेले हो जायँगे, तब भगवान्की कृपासे ही भगवान्को जान लेंगे। प्यारे, कोई भी प्रेमी अपने प्रेमपात्रसे किसीके सामने नहीं मिलता, तो फिर जबतक आप शरीर आदि अनेक सम्बन्धियोंको साथ लिये हुए हैं, आपका प्रेमपात्र आपसे कैसे मिल सकता है? भगवान् कैसे हैं? यदि यह जानना चाहते हो तो अकेले हो जाओ।

When you become alone, then with God's grace only, you will know God. My dear, no lover meets with the beloved



in front of everyone. So, as long as you are carrying all these myriad relations like body etc., with you, how can your beloved meet with you? How is God? If you want to know this, then become [utterly] alone.³

77. किसीको बुलाओ मत; क्योंकि जो आपका है, वह आपके बिना रह नहीं सकता अर्थात् अपने प्रेम-पात्रको निरन्तर अपनेमें ही अनुभव करो। अपने सिवाय अपने लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता नहीं है।

Do not call upon anyone, because the one who is yours will not be able to live without you. Therefore, try to constantly experience your beloved (*prem-pātara*) (or object of love) in yourself. One does not need anyone for oneself other than one's own self.⁴

78. ईश्वर-प्राप्तिके लिये वनमें जानेकी जरूरत नहीं है। जो घरमें आरामसे रहकर भजन नहीं कर सकता, वह वनमें कष्ट सहकर कैसे कर सकता है? वनमें रहना तो तपके लिये आवश्यक होता है।

There is no need to go to the forest to find God. One who cannot remember God while living comfortably at home, how can he remember God while facing the hardships of forest life? Dwelling in the forest is necessary if one has to do penance (*tapa*).

³ Søren Kierkegaard, a Danish philosopher, calls God's quest as a "flight of the alone to the Alone."

⁴ Compare: Bhagavad Gītā 2.55: ...when one is satisfied with the Self through (the joy of) the Self, then one is called a person of steady wisdom.



79. जिसके मनमें शरीरको बनाये रखनेकी रुचि है, जो शरीरको ही अपना स्वरूप मानता है, वह ईश्वरको प्राप्त नहीं कर सकता।

He who is interested in maintaining the continuation of the body, who considers the body to be his real self; he cannot attain to God.

80. परमात्मा है तो, पर न जाने कब मिलेगा? अरे भले आदमी, जब तुम कहते हो कि वह सदैव है, सर्वत्र है, सभीका है; तो कब मिलेगा कि अब मिला है? कितने आश्चर्यकी बात है! इससे बड़ा और कोई पागलपन हो सकता है क्या, यह सोचना कि न जाने परमात्मा कब मिलेगा? जबकि परमात्मासे आप कभी अलग हो सकते नहीं, हैं नहीं।

God is, but we do not know when He will be attained. O, the Pious One! When you say God is eternal, God is everywhere, and God is everyone's then how surprising it is to ask the question "when will I attain God." What could be more absurd than to think like this: "I do not know when will God be attained?" The truth is: you can never ever be separated from God; nor you are separate from God even right now.

81. जिसको तुम प्राप्त करना चाहते हो, उसकी आवश्यकता अनुभव करो। उसको बलपूर्वक पकड़नेकी कोशिश मत करो, केवल आवश्यकता अनुभव करो।

Try to feel the need and necessity of what you want to achieve. Do not try to take hold of it by force. Just experience or feel its necessity.



82. आप सच मानिये, सिद्धि वर्तमानमें ही होती है। भविष्यमें कभी सिद्धि नहीं होती। भविष्यमें तो उसकी प्राप्ति होती है, जो वर्तमानमें नहीं है अर्थात् जिसकी उत्पत्ति हो। जरा सोचिये, साध्य तो हो वर्तमानमें, और साधक यह माने कि हमें भविष्यमें मिलेगा! जरा ध्यान दीजिये, साध्य तो है वर्तमानमें, और मिलेगा भविष्यमें!

Believe it to be true that perfection (*siddhī*) is achieved only in the present. It is never achieved in the future. We achieve only that thing in the future which does not exist in the present, *i.e.*, something that is produced....Think about it: That which is to be attained (*sādhya*) is already there in the present and the spiritual aspirant believes that he will attain it in the future. [How ironic!]. Pay a little attention to this: the object of attainment is present in the present and you think you will get it in future! [How ironic!!]

83. मानवको प्रभु दण्ड नहीं देता, विधान मानवको दण्ड नहीं देता, तो फिर क्या देता है? जिस परिस्थितिसे आपका विकास होता है, वही परिस्थिति आपको देता है।

God does not punish humans, nor does God's Design (*vidhān*) punish humans. What does God do then? Whatever circumstances would be most conducive to our spiritual development, God will present with those circumstances.

84. यह दिमागी कौतूहल है कि किसी परिस्थिति-विशेषकी प्राप्तिसे हम वह हो जायँगे, जो हम आज नहीं हैं। सरकार, यहीं रहेंगे, यहीं। अन्तर यही होगा कि आप तीन बटा चार न लिखकर पचहत्तर बटा सौ लिखियेगा।



To think that we will become something what we are not today by attaining a particular set of circumstances, this is nothing more than an agitation of the mind. My dear, you will be the same, just like you are right now. Only you will write 75/100 instead of writing 3/4!

85. प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक परिस्थिति मंगलमय है, इसी ध्रुव सत्यके कारण जो हो रहा है, वही ठीक है।

According to the Cosmic Law, every situation is beneficial. Whatever is happening according to this Unalterable Law is right only.

86. प्रतिकूल परिस्थिति भोगमें भले ही बाधक हो, पर योगमें नहीं।

Unfavorable circumstances may be obstructive in the indulgence of senses (*bhōg*), but not in *Yōg*.⁵

87. ऐसी कोई अनुकूलता है ही नहीं, जिसने प्रतिकूलताको जन्म न दिया हो और न ऐसी कोई प्रतिकूलता ही है, जिसमें प्राणीका हित न हो।

There is no favorableness that has not given birth to unfavorableness. [There is no fortune that has not given birth to misfortune]. Nor there is such an unfavorableness that is not conducive to human beings.

88. जितने आस्तिक होते हैं, वे प्रत्येक प्रतिकूलतामें अपने परम प्रेमास्पदकी अनुकूलताका अनुभव करते हैं कि अब हमारे प्यारेने अपने मनकी बात करना आरम्भ कर दिया। अब वे हमें जरूर अपनार्येंगे।

⁵ What is implied here is that unfavorable circumstances are very favorable for the purpose of *Yōg*, i.e., for attaining communion with God.



All believers in God experience the favorable will of their Supreme God in every unfavorable situation. And they believe that their beloved God has started exercising His heart's sweet will regarding them and that He will now surely accept them.

89. प्रवृत्तिके द्वारा जिस किसीको जो कुछ मिलता है, वह कालान्तरमें स्वतः मिट जाता है।

Whatever is granted by Nature (*Prakṛti*) ultimately gets destroyed on its own.

90. प्रार्थना इसलिये नहीं की जाती कि आप कहेंगे, तब परमात्मा सुनेंगे। प्रार्थनाका असली रूप है— अपनी आवश्यकताका ठीक-ठीक अनुभव करना।

The prayer is not made for the purpose that God will listen to it later; the real purpose of the prayer is to experience our [spiritual] “need” in the right manner, [right now].

91. जिस प्रकार प्यासका लगना ही पानीका माँगना है, उसी प्रकार अभावकी वेदना ही प्रार्थना है।

As feeling thirsty is to ask for water; similarly, [to feel] the intensity of lack (*abhāv*) itself is a prayer.

92. जो तुम्हारे सम्बन्धमें तुमसे भी अधिक जानते हैं, क्या उनसे भी कुछ कहना है?

He who knows more about you than you do yourself, do you need to say something to Him?



93. जिस प्रकार माँको शिशुकी सभी आवश्यकताओंका ज्ञान है एवं शिशुके बिना कहे ही माँ वह करती है, जो उसे करना चाहिये, उसी प्रकार आनन्दघन भगवान् हमारे बिना कहे ही वह अवश्य करते हैं, जो उन्हें करना चाहिये। परन्तु हम उनकी दी हुई शक्तिका सदुपयोग नहीं करते और निर्बलता मिटानेके लिये बनावटी प्रार्थना करते रहते हैं।

As the mother is aware of all the needs of the infant, and she does what needs to be done without the infant ever having to ask for it; similarly, the Bliss-Absolute Lord surely does what He needs to do, unasked. But we do not properly use the strength that has been given to us and keep on offering artificial prayers to eradicate our weakness.

94. प्रभुकी महिमा सुनकर जो ईश्वरवादी होते हैं, वे कामी हैं, प्रेमी नहीं।

Those who become believers in God after listening to the glory of God, they are selfish (*kāmī*) and not devotees (*premi*).

95. योगकी प्राप्तिमें, बोधकी प्राप्तिमें, प्रेमकी प्राप्तिमें कुछ न चाहना ही मूल मन्त्र है।

For attaining communion with God, self-realization and experiencing unconditional love- desiring nothing is the basic mantra.

96. अपने प्रियतमको अपनेसे भिन्न किसी औरमें अनुभव मत करो।

Do not experience your Beloved (*priyatam*) as separate from yourself in someone else.



97. जिनके सम्बन्धमात्रमें ही देहाभिमान गल जाता है, उनके प्रेमकी प्राप्तिमें भला देहादिकी क्या अपेक्षा होगी?

What will be the need for body etc., to attain Him, whose mere association dissolves the body-conceit?

98. प्रेम तभी सुरक्षित रह सकता है, जब प्रेमीमें इस भावका उदय भी न हो कि मैं प्रेमी हूँ; क्योंकि प्रेम प्रेमीको खाकर ही पुष्ट होता है।

Love can remain safe only when even the feeling that one is a lover does not arise in the lover. Because love thrives on devouring the lover.

99. यह प्रश्न नहीं है कि आपका साध्य क्या है। प्रश्न यह है कि आपकी अपने साध्यमें प्रियता है या नहीं। जीवनमें मूल्य प्रियताका है।

The question is not what your spiritual goal is. The question is whether you have fervent interest in that goal or not. It is the fervent interest that counts in life.

100. भोगी मनुष्य प्रेमका अधिकारी नहीं होता। वह तो सेवाका अधिकारी है।

The one who indulges in sense-gratification (*bhōgī*) is not qualified to love. He is qualified to serve only.

101. जबतक प्राणीका शरीर और संसारसे सम्बन्ध नहीं छूटता, जबतक वह शरीरको 'मैं' और संसारको अपना मानता है, तबतक गोपी-प्रेमकी बात समझमें नहीं आती।

Until the relationship with the body and the world is relinquished; as long as one considers the body as "I"



and the world as “mine,” till then one does not understand *Gopi-Prem*.⁶

102. जहाँ प्रेम प्रकट हो जाता है, वहाँ इन्द्रियोंके दरवाजे बन्द हो जाते हैं।

Where love manifests, there the doors to senses get shut.

103. जबतक देहभाव रहता है, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ— ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है— यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है?

As long as the “body-consciousness” (*dēha-bhāv*) remains that is, I am a man, I am a woman-as long as this feeling is there, until then one does not get the right to listen and to understand *Gopi*-character (*gopi-charitra*). Then how can one understand what *Gopi*-love is!

104. जिस तनसे, धनसे, बुद्धिसे आप संसारमें भले आदमी कहलाये, उसी तन-बुद्धि आदिसे आप परमात्माके प्रेमी हो जायँ, यह सम्भव नहीं है।

It is not possible that you will become lover of God by virtue of the same body-mind etc. by which you have been called a good person in the world.

105. आप अपने निकटवर्ती प्रियजनोंसे पूछिये कि आप हमको बहुत प्यारे लगते हैं, लेकिन हमारे पास जो वस्तु है, वह हम आपको नहीं दे सकते, तो आपको तुरन्त उत्तर मिलेगा कि

⁶*Gopi-Prem* refers to *Gopi*'s transcendental love for Lord Krishna. From the point of view of *tattva*, *Gopīs* are the Blessed Lord Krishna's own potencies.



आपका प्यार भाड़में जाय। केवल प्रियतामात्रसे रीझनेमें प्रभु ही समर्थ हैं। संसारभरकी आप स्वोज कीजिये, एक भी आदमी आपको ऐसा नहीं मिलेगा जो आपको यह कहे कि हम आपको अपना मानते हैं, इतने मात्रसे आप प्रसन्न हो जाइये।

Let your near and dear ones know that they are very dear to you; however, you cannot give to them what you have. The answer you will hear immediately will be that they could care less for your love for them (if you are not able to give them what you have)...Only God is capable of being enamored just by dearness alone. Search the entire world, and you will not find even a single person who can say this to you that he would be happy with you just because you consider him as your own!

106. आत्मीयता वही कर सकता है, जो भोग और मोक्षको फुटबाल बनाकर ठुकरा दे। महँगी है तो इतनी और सस्ती है तो इतनी कि धोखेसे, बिना सोचे, बिना समझे एक बार यह कहके चुप हो जाय कि 'प्रभु, निस्सन्देह तुम सदैव मेरे हो', 'तुम सदैव मेरे हो'।

He alone can revel in identity with the self (*ātmīyatā*) who is able to throw away the sense pleasures and the salvation like a football. The long and short of it is this only that for once, without thinking, without understanding even if by trick, he becomes silent after saying, "O Lord! Undoubtedly, 'You forever are mine;' verily, 'You are forever mine!'"



107. मेरा यह अनुभव है कि यदि हम अपने साथ बुराई न करते, तो संसारकी सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे साथ बुराई कर सके।

It is my experience that if we had not done evil to ourselves, the world has no power that it could do evil to us.

108. जब-जब मैं सोचता हूँ, तब-तब मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि हे मानव! तूने अपने साथ जितनी बुराई की है, कोई दूसरा तेरे साथ उतनी बुराई कभी कर ही नहीं सकता।

Whenever I think, I come to the conclusion, O Man! No one could ever do evil to you to the extent that you have done it to yourself.

109. अपनी भलाईका भास हो जानेपर भी भलाई 'भलाई' नहीं रह जाती। तब सूक्ष्मरूपसे बुराईका जन्म हो जाता है।

Good deeds cease to be "good" when one becomes conscious of them; and then evil is born in a subtle form.

110. हम किसी दूसरेके प्रति कोई भलाई तथा बुराई कर ही नहीं सकते, जबतक कि अपनेको भला या बुरा न बना लें।

We cannot do good or bad to someone else until first making ourselves good or bad.

111. बुराईको बुराई जानकर न करना और भलाईको भलाई जानकर करना साधन है। परन्तु किसी भी प्रलोभनसे प्रेरित होकर की हुई भलाई और किसी भयसे भयभीत होकर त्यागी हुई बुराई वास्तवमें साधनके रूपमें असाधन है।

To abstain from the evil knowing it to be evil and to engage in the goodness knowing it to be good is spiritual



practice. However, any good act undertaken on account of any enticement and any evil forsaken on account of being afraid of any fear, is in fact an unspiritual practice under the guise of spiritual practice.

112. बड़ी-से-बड़ी अच्छाई अभिमान आनेपर बुराईमें बदल जाती है।

The greatest ever merit turns into a demerit upon the advent of pride.

113. सबसे बड़ा आदमी, जिसको सुपरमैन, अतिमानव कहें, कौन है? जिसके जीवनमें किसी प्रकारकी बुराई नहीं है, वह सबसे बड़ा आदमी है। किसके जीवनमें बुराई नहीं होती? जो सचमुच कभी किसीसे कुछ नहीं चाहता।

Who is the greatest man, the one who can be called a superman or ultra-man? He is the greatest man in whose life there is no evil of any kind. In whose life there is no evil? *He who truly does not expect anything from anyone.*

114. संसारका भय उसी समयतक जीवित रहता है, जबतक अपनी पूर्तिके लिये संसारकी आवश्यकता होती है।

The fear of the world remains alive as long as we need the world to fulfill ourselves.

115. देहाभिमानमें ही समस्त भय निहित हैं।

All forms of fears are implicit in the body-conceit (*dehābhimān*).

116. स्वाद्य पदार्थोंमें कुछ वस्तुएँ ऐसी हो सकती हैं, जो स्थूलशरीरके लिये तो उपयोगी हों, किन्तु सूक्ष्मशरीरके लिये हानिकर हों। अतः आहारका सम्बन्ध केवल शरीरके



अंगोंको हृष्ट-पुष्ट करना ही नहीं है, अपितु इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिको भी स्वस्थ रखना है। वह तभी सम्भव होगा, जब उस आहारका, जो सूक्ष्मशरीरके लिये हितकर नहीं है, त्याग कर दिया जाय। क्षोभ, असहनशीलता आदि दोषोंका सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरके अस्वस्थ होनेसे ही है।

Among the edible things, there may be some which are useful for the gross body but are harmful for the subtle body....Thus the purpose of food is not just to nourish various limbs of the body, but also to keep healthy the senses, the mind, the intellect etc. It will be possible only when we give up that food which is not conducive to the subtle body. Defects such as irritation, intolerance etc., are related to sickness of the subtle body.

117. जबतक हम जगत्में प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते अथवा यों कहो कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते, तबतक सदाके लिये मन भगवान्में लग जाय, यह बात कभी भी सिद्ध नहीं होती।

Until we can see God in the world or, put differently, until we are able to see God in everything, till then it is not possible that our mind will get absorbed in God forever.

118. मनमें कोई खराबी होती ही नहीं है। अपनी खराबी ठीक करो, मन ठीक हो जायगा।

There is never any blemish in the *mind* ever. Rectify the blemish that is in *yourself*, the mind will get right.

119. कार्यकी अधिकतासे स्वास्थ्यपर प्रभाव हो सकता है, पर मानसिक स्थितिमें कोई विकृति नहीं होनी चाहिये। मानसिक



विकृतिका मूल कारण पराधीनता है अर्थात् जिसकी प्रसन्नता किसी औरपर निर्भर हो जाती है, उसीके मनकी स्थितिमें क्षोभ उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मानसिक संतुलन नहीं रहता और फिर मस्तिष्कमें अनर्गल ख्याल उठते रहते हैं।

Excessive work may affect adversely the physical health, but the mental state should not register any distortion. The main reason for mental distortion is dependence upon others. That is, when a person's cheerfulness is dependent on someone else, that person's state of mind gets perturbed due to which mental balance is lost and then absurd thoughts start arising in the mind.

120. मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्में लगाना चाहता है, भूल यहींसे होती है।

Man, while himself remaining separate, wants to direct his mind, intellect, and senses towards God, this is where the mistake starts.

121. संसारके सम्बन्धका जो प्रभाव है, सच पूछो तो उसीका नाम मन है। मन कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

The effect of relationship with the world, truly speaking, is what is verily called mind. Mind is not an independent entity. [Mind is nothing but the result of our relationship with the world].

122. मनको जहाँ लगाना चाहते हैं, उसे पसन्द कर लें और जहाँसे हटाना चाहते हैं, उसे नापसन्द कर दें। मनकी चंचलताका भास तभी मिलता है, जब हम पसन्द तो संसारको करते हैं और मन भगवान्में लगाना चाहते हैं।



On whatever you want to fix your mind, develop a liking for it; and from whatever you want to remove your mind, develop a disliking for it. We only intuit the restlessness of the mind when we want to fix our mind on God while we actually like the world.

123. वास्तवमें तो भलाई और बुराई कर्तमिं होती है, करणमें नहीं होती। जब करणमें नहीं होती, तब मन कर्ता है ही नहीं, वह तो करण है। जब मन कर्ता है ही नहीं, तब हम और आप किस न्यायसे, किस ईमानदारीसे अपने मनको भला और बुरा बतलाते हैं? हम भले होते हैं, मन भला होता है। हम बुरे होते हैं, मन बुरा होता है।

In fact, the goodness and badness reside in the doer, and not in the instruments [of action/perception]. If so, then mind is not the doer, for it is the instrument only. When mind is not the doer, then according to what justice, what integrity, do you consider your mind as good or bad? *When we are good, mind is good; when we are bad, mind is bad.*

124. किसीको भला और बुरा मानकर उसकी ममता मिटाना सम्भव नहीं है। ममता उसीकी मिट सकती है, जिसको भला अथवा बुरा न मानें। किसीको भला-बुरा समझना उससे सम्बन्ध जोड़ना है।

It is not possible to eradicate attachment/affection (*mamata*) regarding anything by considering it good or bad. Attachment/affection regarding anything can be ended by not considering it either good or bad. To consider anything good or bad is to establish a relationship (of *rāg-dvēṣa*) with it.



125. जिस वस्तुसे ममता नहीं रहती, वह अनन्तको समर्पित हो जाती है। यह नियम है कि जो वस्तु अनन्तको समर्पित हो जाती है, वह अनन्तकी कृपा-शक्तिसे स्वतः शुद्ध हो जाती है।

To whatever thing we are no longer attached, that very thing gets surrendered to the Endless or the Infinite (*anannta*). It is a cosmic law that whatever is surrendered to the Endless One, that thing becomes pure on its own by the benevolent power of the Endless One.

126. आजकल लोग क्या कहते हैं? ममता कैसे छूटेगी, कामना कैसे मिटेगी? अजी, ममता अगर अपने-आप छूटती, तो होती ही नहीं। क्यों? जो चीज आपने बनायी है, उसको कोई और नहीं मिटा सकता।

These days people ask about how to end the attachment/affection (*mamata*) and the desire/craving (*kāmnā*). Well, if attachment/affection were to end on its own, it would not have taken place to begin with. No one else can demolish that which you have created yourself. [Since we started the craving, we have to end it. *Asking around will not help!*]

127. जो होती है, उसे मुक्ति थोड़े ही कहते हैं। जो है, उसे मुक्ति कहते हैं।

That which is attained, is not called spiritual liberation (*mukti*); that which *is*, is called *mukti*.

128. जो वस्तु जिस कामके लिये होती है, उसके लिये वह काम कठिन नहीं होता। यह मनुष्यजन्म केवल जीवके कल्याणके



लिये ही मिलता है। इसलिये इसको पाकर कल्याणकी प्राप्ति को कठिन मानना भारी भूल है।

The task for which an object is designed, it is not difficult for that object to accomplish that task. This human life is granted only for the liberation of the empirical self (*jīva*). Therefore, having received it, to consider that the liberation is difficult is a great mistake.

129. मेरे जीवनकी अन्तिम अनुभूति है कि श्रमके बिना, वस्तुके बिना, साथीके बिना हम सबको सिद्धि मिल सकती है।

My life's final conclusion based on my experience is that we all can attain spiritual perfection (*siddhi*) without any effort, without needing anything, and without any companion.

130. इच्छाएँ रहते हुए प्राण चले जायँ तो, 'मृत्यु' हो गयी, फिर जन्म लेना पड़ेगा। और प्राण रहते इच्छाएँ चली जायँ, 'मुक्ति' हो गयी। जैसे बाजार गये, पर पैसे समाप्त हो गये और जरूरत बनी रही तो फिर बाजार जाना पड़ेगा। और यदि पैसे रहते जरूरत समाप्त हो जाय तो बाजार काहेको जाना पड़ेगा ?

If the 'life-current' (*prān*) ends while desires remain, then the "death" has taken place and one has to be born again. And if the desires end while the life-current remains, then that is liberation (*mukti*). For example, if you go to the market and run out of money while you still had some needs left, then you would have to go to the market again. But if your needs have ended while you still have the money, then why would you have to go to the market [again]?



131. जो जीवनमें मुक्त नहीं होता, वह मरनेके बाद भी मुक्त नहीं होता। और जो ऐसा मानता है कि मुक्ति अभी नहीं मिली, मरनेके बाद मिलेगी, वह अपनेको धोखा देता है।

One who is not liberated while living is also not liberated after death either. And the one who believes that liberation is not attained right now but will be attained after death, is actually deceiving oneself.

132. जहाँतक हमारे विश्वासकी बात है, वह यह है कि मरनेमें कोई कष्ट नहीं होता। कष्ट जो होता है, वह इस बातका होता है कि हम जीना चाहते हैं और मरना पड़ रहा है। अगर हम जीना न चाहें तो मरनेमें कोई कष्ट नहीं है।

I believe that there is no pain involved in dying. The pain involved is due to the fact that we have to die while we want to live....If we do not crave to live, then there is no pain in dying.

133. भोग-बुद्धिका अन्त होते ही योग बिना ही प्रयत्न हो जाता है।
With the ending of the desire for sense-indulgence (*bhōg-buddhi*), *Yōg* is attained without any effort.

134. स्वप्नकी घटना स्वप्नकालमें तो जाग्रत्के ही समान सत्य है और जाग्रत्में भूतकालकी घटनाएँ वर्तमानमें स्वप्नके समान ही मिथ्या हैं। इस दृष्टिसे स्वप्न और जाग्रत्की घटनाएँ समान ही अर्थ रखती हैं; परन्तु प्राणी जाग्रत्की घटनाको सत्य मानकर उनके राग-द्वेषमें आबद्ध हो चित्तको अशुद्ध कर लेता है।

During dream, the dream events appear to be real like those during the waking period. And during waking period, the past events are unreal like the dream in the present. According to this point of view, the dream and



waking events carry equal significance. However, human beings, considering the waking events to be real, pollute their minds by being caught up in the likes and dislikes (rāg-dvēṣa) of those events.

135. शरीरका पूर्ण स्वस्थ होना शरीरके स्वभावसे विपरीत है; क्योंकि जिस प्रकार दिन और रात दोनोंसे ही कालकी सुन्दरता होती है, उसी प्रकार रोग और आरोग्य दोनोंसे ही शरीरकी वास्तविकता प्रकाशित होती है।

It is contrary to the nature of the body for the body to be completely healthy. Just like the beauty of time depends upon both the day and the night, in the same manner the real nature of the body is revealed by health as well as illness.

136. रोग-निवृत्तिका एक सर्वोत्तम उपाय यह भी है कि यदि रोगी रोगी-भावका सद्भाव अपनेमेंसे निकाल दे तो फिर रोग बेचारा निर्जीव हो जाता है; क्योंकि 'मैं' की सत्तासे सभी सत्ताएँ प्रकाशित होती हैं। सद्भावसे प्रतीतिमें सत्यता आ जाती है, जो दुःखका मूल है।

This is also one of the best ways to cure the disease that the patient should cease to think of and identify with the disease, then the disease becomes lifeless; because by giving importance to "I" consciousness, all identities get illuminated....Having a feeling of benevolence [for the body], all [false] identities appear which are root cause of sorrow.

137. रोग यही है कि 'मैं रोगी हूँ'। औषधि यही है कि 'मैं सर्वदा आरोग्य हूँ'; क्योंकि आरोग्यतासे जातीय एकता है।



यदि एक बार भी अपनी पूरी शक्तिसे यह आवाज लगा दो कि 'मैं आरोग्य हूँ' तो रोग भाग जायगा।

That "I am sick" is the only disease. The medicine is only this: "That I am ever disease-free." Since we are disease-free in our real nature....if one even once exclaims with full force that "I am disease-free," the disease will run away.

138. जब साधक अपने लक्ष्यको मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यके द्वारा प्राप्त करना चाहता है, जो उसे विश्व-सेवाके लिये मिली हैं, तब लक्ष्यसे दूरी, भेद, भिन्नता प्रतीत होती है।

When the spiritual aspirant tries to attain his goal through an object, ability, and competence that was given to him to serve the world, then he feels distance, difference, and separation from the goal.

139. वस्तुएँ तो हमारा त्याग कर ही रही हैं, यदि हमने भी उनका त्याग कर दिया तो वे हमारी सराहना करेंगी। वे घबड़ाती हैं, बहुत दुःखी होती हैं संग्रहसे, दुरुपयोग करनेवालेसे और उससे, जो उनपर ममताका पत्थर रख देता है। वे प्रसन्न होती हैं उससे, जो न उनसे ममता करता है, न उनका संग्रह करता है और न दुरुपयोग। उनकी प्रसन्नताकी पहचान यह है कि फिर आपके लिये आवश्यक वस्तुएँ अपने-आप आने लगती हैं, जीवनसे दरिद्रता सदाके लिये मिट जाती है।

The objects are verily renouncing us [all the time]; and if we too renounce them, then they will appreciate us. Metaphorically speaking, the objects get disturbed and tormented when hoarded and when someone misuses



them and places the stone of 'mine-ness' upon them. They are happy with the one who is neither attached to them, nor hoards them or misuses them. The proof of their happiness is this that you start getting the essential objects on their own; and the impoverishment vanishes from your life forever.

140. विवेकके प्रकाशको ही जब किसी भाषा-विशेष या लिपि-विशेषमें आबद्ध कर देते हैं, तो वह 'ग्रन्थ' कहलाता है और जब उस विवेकके प्रकाशको किसीके जीवनमें देखते हैं, तो उसे 'सन्त' कहने लगते हैं।

When we capture the luminosity of discriminative wisdom (*viveka*) in a particular language or script, it is called a 'scripture.' And when we see the luminosity of the same *viveka* in the life of some person, we start calling that person a 'saint.'

141. देखते हुएमें विश्वास और बिना देखते हुएपर विचार करना विश्वास और विचारका दुरुपयोग है।

Belief in what is seen and engaging in self-inquiry (*vichār*)⁷ regarding the unseen is a misuse of belief and self-inquiry. [Alternative rendering: Belief in what is seen and thinking about what is unseen is a misuse of belief and the faculty of rational thinking].

142. आपको जो व्यक्ति मिला है, वह विश्वास करनेके लिये नहीं, सेवा करनेके लिये मिला है। आपको जो वस्तुएँ मिली हैं, वे संग्रह करनेके लिये अथवा विश्वास करनेके लिये नहीं, सदुपयोग करनेके लिये मिली हैं।

⁷*Vichār* can be interpreted to mean the path of Self-Inquiry. [cf. Sri Ramana Mahārshī's teaching]



Whoever person is entrusted to you, is not entrusted to believe in but to serve. Whatever things are entrusted to you, are not entrusted to you for hoarding or to believe in but to put them to proper use.

143. हम अपने लिये यह करेंगे, इससे हमें कुछ मिलेगा, हमें जगत्से कुछ मिलेगा, हमें प्रभुसे कुछ मिलेगा। तो जबतक ये बातें जीवनमें रहती हैं, तबतक विश्राम नहीं मिलता।

That we will do this for ourselves; that we will get something from it; that we will get something from the world; that we will get something from God as long as such thinking is a part of one's life, one does not get repose (*vishrām*) in life.

144. शरणागत होनेमें ही साधकके पुरुषार्थकी परावधि है।

In taking refuge lies the supreme achievement [of self-efforts] of the spiritual aspirant.

145. जो सच्चाईपूर्वक प्रभुके शरणागत हो जाते हैं, उनको आवश्यक वस्तुएँ बिना माँगे ही मिल जाती हैं, और अनावश्यक माँगनेपर भी नहीं मिलतीं।

Those who sincerely take refuge in the Lord receive the necessary objects, unasked; they do not get the unnecessary objects even when asked for.

146. हम अपने शरीरको अपना मानते हैं और बहुत महत्त्व देते हैं, इसलिये संसार इसे महत्त्व नहीं देता। एक सम्पत्तिके दो मालिक नहीं हो सकते। जो वस्तु प्रभुकी हो जाती है, उसकी व्यवस्था आप-से-आप हो जाती है।

We regard our body as ours and give it tremendous importance. That is why the world does not give it any



importance. There cannot be two owners of the same property. That object which has become God's [through total surrender] gets provided for on its own [by God].⁸

147. परमात्माको पानेके लिये आपको कोई सामग्री नहीं चाहिये। जब कोई सामग्री नहीं चाहिये तो शरीरका क्या अचार डालोगे? यह परमात्माकी प्राप्तिमें तो काम आयेगा नहीं। शरीरके द्वारा परमात्माके संसारकी सेवा कर दो।

You do not need any material thing to attain God. If you do not need anything to attain God, then what purpose the body will be good for? It will not be useful to attain God. Just serve the world through the medium of the body.

148. साधकोंको वास्तवमें अपने लिये किसी भी कालमें शरीरकी आवश्यकता नहीं है।

In reality, the spiritual aspirant at no time needs the body for his own self.

149. किसीसे कोई पूछे कि तुम र्वूनमें, हड्डियोंमें, मांसमें, मज्जामें, मूत्रमें रहना चाहते हो? तो सभी विचारशील यही कहेंगे कि नहीं रहना चाहते। कारण कि मलिनता किसीको प्रिय नहीं। अब हम स्वयं सोचें कि देहमें मलिनताके अतिरिक्त क्या है, तो मानना होगा कि कुछ नहीं।

⁸The Blessed Lord in the Bhagavad Gītā 9.22 assures His devout devotees: '*...yogakṣemaṃ vahāmy aham*:'...I provide for what they lack and preserve what they have in terms of spiritual resources. Swāmī RāmTirath used to say that this is the mid-point of the Gītā, the very center of the Gītā this seminal verse splits the Bhagavad Gītā in two halves! Hence its importance!



If someone were to ask do you want to live in the blood, in the bones, in the flesh, in the bone marrow, in the urine? All thoughtful people will say that they do not want to live in such a manner because no one likes impurity. Now let's think ourselves what else is there in the body except the impurities? One has to admit that there is nothing else!⁹

150. जहाँ देह है, वहीं मृत्यु है।

Where there is form (*dēha*), there is death.

151. यदि किसीसे कहा जाय कि सुवर्णके कलशमें मल-मूत्रादि भरकर और रेशमसे ढककर क्या उसे अपने पास रखना पसन्द करोगे? तो सभी भाई-बहन कह देंगे, नहीं। फिर हम शरीरको सुन्दर-सुन्दर अलंकारों एवं वस्त्रोंसे सुशोभित क्यों रखते हैं? तो कहना होगा— बुद्धिजन्य ज्ञानके निरादरसे।

If one were to place crap in the urn and cover it with silk cloth and ask someone if they would like to keep it, then everyone would say, no. Then why do we decorate the body with most beautiful ornaments and clothes? One would have to say by disregarding the knowledge born of our [discriminative] intelligence.

152. जैसे संसार मुझसे अलग है, जितना दूर है, यह शरीर भी मुझसे उतना ही दूर है। जैसे संसारपर मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, वैसे ही अपने शरीरपर भी मेरा स्वतन्त्र अधिकार

⁹ This may seem very harsh to some modern sensibilities since we identify with our body too much. Our entire cosmetic-culture is devoted to keeping us seduced to the attractions of the ephemeral body. The fact is that our body is constantly degenerating despite our great desire and best efforts to keep it in tact. Therefore, saints, in their inexhaustible compassion, help us to develop dispassion (*vairagya*) towards the body which is *vikaṛī* after all.



नहीं है। ईमानदारीकी बात तो यह है कि शरीर और संसारका आपसे कभी मिलन हुआ ही नहीं।

Just like the world is separate from me, and is so far from me; even so this body is also that much far from me. Just like I do not have sovereignty over the world, even so I have no sovereignty over my body also....Truthfully speaking, there has never been any unification of the body and the world with our [real] self.

153. शरीरके बिना साधक अचाह हो सकता है; प्रभुसे आत्मीय सम्बन्ध जोड़ सकता है; की हुई तथा जानी हुई बुराईसे रहित होनेका व्रत ले सकता है; प्रभु-विश्वासके आधारपर अभय हो सकता है। प्रभु-प्रेमसे साधक प्रभुके लिये उपयोगी हो सकता है।

The spiritual aspirant can become desireless without the body, can create a relationship of self-identity with God, can take a pledge to be free from the committed vice as well as from the known vice, and can become fearless based on trust in God. With love for God, the spiritual aspirant can be of service to God.

154. हम शरीरमें बैठे हैं, यह महापागलपन है। शरीर नहीं रहेगा तो मेरी क्षति हो जायगी— यह मानना बड़ा भारी पागलपन है।

To believe that our Self dwells in our body is a great folly. To believe that it will be great loss to my Self when the body will be no more, is a very big folly.

155. जो मनुष्य अपने शरीरसे सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता, वह संसारसे भी नहीं तोड़ सकता। सम्बन्ध रक्वते हुए यदि वह हिमालयपर चला जाय तो भी उसका चित्त शान्त और शुद्ध नहीं हो सकता।



A person who cannot sever his relationship with his body-identification, cannot sever his relationship with world-identification either. While identified with the body, he may go to Himalayas; even then, his mind will still not become pure and calm.

156. पढ़ा-लिखा भ्रममें तभी पड़ता है, जब अपनी बात नहीं मानता। पढ़ाई-लिखाई तो एक प्रकारकी योग्यता है। योग्यता जब ज्ञानके अधीन नहीं रहती, तो बड़े-बड़े अनर्थ कर डालती है। समाजमें जितने दोष पढ़े-लिखोंने फैलाये, उतने किसीने नहीं फैलाये।

A literate person gets confused only when he does not listen to his rational judgment. Literacy is only a type of competence. And when this competence is no longer guided by the light of wisdom, it ends up indulging in acts of great terror. No one else has spread so many faults in the society as the so-called educated people have done.

157. शिक्षित होनेकी कसौटी क्या है? तो कहना होगा कि ज्ञान-विज्ञान, कला आदिके द्वारा हम अपनेको इतना सुन्दर बना लें कि समाजको हमारी आवश्यकता अनुभव होने लगे।

What is the touchstone of being educated? One has to say this: That through wisdom and knowledge of science, we should make ourselves so splendidly educated that the society starts experiencing the need for our contribution.

158. हिंसात्मक युद्ध किसी प्रकार विजय प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि शरीररूपी क्षेत्रके तोड़ देनेसे विचारोंका समुदाय मिटाया नहीं जा सकता। अतः हिंसात्मक युद्धसे जो राष्ट्र आज छिन्न-भिन्न दिखायी देता है, वही कालान्तरमें घोर



प्रबलतापूर्वक पुनः युद्ध करनेके लिये समर्थ होता है; क्योंकि उसकी युद्धकी भावना नष्ट नहीं हुई थी। मरनेवाला प्राणी पुनः मारनेके लिये प्रकृति मातासे शक्ति लेकर उत्पन्न होता है।

The violent war cannot win victory in any way, because the accretion of thoughts cannot be extinguished by destroying the field of bodily forms. Thus the nation that seems devastated today by the violent war again becomes capable to wage a war later on with much more extreme force; because its sentiment for war did not get extinguished. The dying person re-emerges again to kill, gaining power from the mother-nature.

159. दुःखियोंके शरीर आदि वस्तुओंको छिन्न-भिन्न कर देनेसे उनका अन्त नहीं हो जाता; क्योंकि सूक्ष्म तथा कारणशरीर शेष रहते हैं। यदि हम किसीके स्थूलशरीरको नष्ट भी कर दें तो भी वह प्राणी जिस भावको लेकर स्थूलशरीरका त्याग करता है, उसी भावनाके अनुरूप प्रकृति मातासे अथवा यों कहे कि जगत्-कारणसे शक्तिसंचय कर, हमसे अधिक शक्तिशाली हो, हमारा विरोध करनेके लिये हमारे सामने आ जाता है।

Shattering the bodies and the objects of suffering people does not accomplish their end since the subtle and causal bodies linger behind. If we destroy a person's gross/physical body, even then, according to the feelings/thoughts he had while giving up the physical body, that person, having gained the strength from the mother nature, presents himself before us to confront us.

160. संसारकी जरूरत आपको न रहे और संसार आपकी जरूरत अनुभव करे— यह है जीवनका शुद्ध भौतिकवाद। इसको कहते हैं दुनियामें रहनेका सही ढंग।



When you no longer need the world, but the world needs you, this is life's pure materialistic form. This is called the art of living properly in the world.

161. अपना सुधार जो नहीं कर सकता, वह किसीका सुधार नहीं कर सकता, सुधारके नामपर अपनी कामनाओंकी पूर्ति कर सकता है।

One who cannot transform oneself, cannot reform or transform others; but in the name of transformation or reform can satisfy one's libidinous or carnal desires.

162. संसार दुःखद नहीं है, संसारका सम्बन्ध दुःखद है।

The world is not sorrowful; (having or establishing) relationship with the world is sorrowful.

163. जब आप कोई कामना पूरी करना चाहते हैं, तब आपको संसारका भास होता है। आप कुछ न चाहें, संसार आपको मुँह नहीं दिखायेगा।

World's existence is felt only when you want to fulfill any desire. [When you want to fulfill any desire, then you feel the existence of the world]. If you do not desire anything from the world, the world will not show its face to you.

164. शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके द्वारा सत्संग नहीं होता। अपने ही द्वारा सत्संग करना है; कारण कि अपने ही में सत्संगकी माँग है। शरीरके सम्बन्धसे तो ममता, कामना आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है।

Association with Truth (*satsang*) is not obtained through the body, senses, mind, intellect etc. We have to experience the *satsang through and within* our own self.



It is because the necessity of *satsang* is felt within our own self/soul. [that is, *satsang* is the necessity of the Self or soul]. Association/identification with the body only gives birth to perturbations like attachment, craving etc.

165. सत्संगका अर्थ यह व्याख्यान सुनना नहीं है। यह तो सच्चर्चा है। सोचना-समझना— यह सच्चिन्तन है। सत्संग है— सत्यको स्वीकार कर लेना। ‘मेरा कुछ नहीं है’— यह सत्य है। ‘मुझे कुछ नहीं चाहिये’— यह सत्य है।

Association with Truth (*satsang*) does not mean merely listening to such discourses. *Satsang* is verily the conversation about Truth. Thinking-understanding this is called pondering over Truth. *Satsang* means to accept or to embrace the Truth. “Nothing is mine” this is the Truth. “I do not need anything” this is the Truth.

166. समस्त विश्व मिलकर भी साधककी वास्तविक माँगको पूरा नहीं कर सकता। इस दृष्टिसे साधकका मूल्य सृष्टिसे अधिक है।

Even the whole world put together cannot fulfill any spiritual aspirant's real need. From this standpoint, the spiritual aspirant is more valuable than the entire world or creation.

167. जो किसीके लिये भी अनुपयोगी होता है, वह साधक नहीं है।

He who is not valuable to someone is not a spiritual aspirant.

168. साधक महानुभाव व्यक्तिगत साधनाको सामूहिक साधना बनानेका प्रयास न करें, न उसका प्रदर्शन करें।



Spiritual aspirants should not try to elevate their personal spiritual practice (*sādhana*) to collective *sādhana*. Nor should they try to make it motley to the public view.

169. शरीरकी असंगतामें ही प्रेमास्पदकी आत्मीयतापूर्वक अभिन्नता निहित है। इस दृष्टिसे असंग होना प्रत्येक साधकके लिये अनिवार्य है।

In the detachment from the body lies the non-separation of self-identity with the Beloved (*premāspad*). In this view, it is very important for each *sādhaka* to be detached [from the body].

170. जो किसीसे कुछ भी पानेकी आशा करता है, वह साधक नहीं है, अपितु भोगी है।

He who expects to get anything from anyone is not a spiritual aspirant (*sādhaka*) but an aspirant of enjoyment of the sense-pleasures (*bhōgī*).

171. शरीर आदिकी स्मृतिमात्र भी साधकके लिये असह्य है, तो फिर उनमें विशेषताकी अभिरुचि रखना आसक्तिके अतिरिक्त और क्या है?

Even the mere remembrance of body etc. is intolerable for the spiritual aspirant. And then to have a keen interest in the body as something special is nothing more than attachment.

172. जो अपने सुखके लिये तप करता है, जो अपने सुखके लिये जप करता है, उसकी गणना, माफ कीजियेगा, हिरण्यकश्यपकी सूचीमें की जाती है। अपने सुखके लिये किया गया भजन, अपने सुखके लिये किया गया तप,



अपने सुखके लिये किया हुआ दान, यह राक्षसी स्वभाव है। यह मानवी स्वभाव नहीं है।

He who performs penances (*tapās*) for his own pleasure; he who does chanting of God's Name (*japa*) for his own pleasure; he belongs, sorry to say, among the list of people like Hiranyakashyap.¹⁰ Any chanting done for one's own pleasure, any penance performed for one's own pleasure, and any charitable act performed for one's own pleasure, is of demonic nature. This is not our true human-nature.

173. आजकल लोग साधन तो करते नहीं और साधनका फल लेना चाहते हैं, तब उनको सफलता कैसे मिले? हरेक मनुष्य सोचता है कि साधन करके योग्यता तो दूसरा प्राप्त कर ले और हमें आशीर्वाद दे दे, ताकि हमें उसका सुख मिल जाय। साधनकी सफलताके लिये साधकको स्वयं साधन करना पड़ेगा।

These days people do not want to engage in spiritual practice but want to get the fruit of such practice. Then how can they be successful in this undertaking? Everybody wants that someone else should attain competence through spiritual practice and should just

¹⁰The story of King Hiranyakashyap and his son Prahlad is the classic evil versus good story. It begins when Prahalad, the son of King Hiranyakashyap, made his father angry by saying that Vishnu was the greatest God of all and his father was only a mortal king. In a rage, the king threw his son off of a cliff in an attempt to kill him; however, his son survived the fall in addition to being trampled by elephants, bitten by snakes, and attacked by soldiers.



bless them so that they can reap its benefit....In order to succeed in the spiritual practice, the spiritual aspirant has to put forth the spiritual efforts all by himself.

174. कारणका नाश होनेपर भी कार्यकी प्रतीति होती है। जिस प्रकार वृक्षका मूल कट जानेपर भी उसकी हरियाली कुछ काल प्रतीत होती है, उसी प्रकार असत्का त्याग करनेपर भी असत्के संगके प्रभावको कुछ काल साधक अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिमें देखाता है और भयभीत हो जाता है। इतना ही नहीं, अपने किये हुए असत्के त्यागमें भी विकल्प कर बैठता है। असत्का त्याग वर्तमानकी वस्तु है; परन्तु उसके प्रभावके नाशमें काल अपेक्षित है। अपने निर्णयमें विकल्प करना भी तो असत्का ही संग है। जब साधक सावधानीपूर्वक अपने निर्णयमें विकल्प नहीं करता, तब अपने-आप असत्के संगका प्रभाव नष्ट हो जाता है।

Despite the destruction of the cause, the effect is being felt. Like when a tree is completely cut, its greenery is still seen for some time; in the same manner a spiritual aspirant, having given up his association with the untruth, still feels the effect of untruth in his body, senses, mind, and intellect. Due to this effect, the spiritual aspirant feels afraid. Not only this, the spiritual aspirant even ends up being uncertain about his decision regarding the untruth that he had renounced. Although the renunciation of untruth takes place in the present, yet the destruction of its effect requires time. To be uncertain about one's decision is also a form of association with the untruth. When the spiritual aspirant



does not feel uncertain about his decision regarding the renunciation of untruth, the effect of association with untruth gets destroyed on its own.

175. जबतक आप जगत्की सत्ता स्वीकार करते हैं, तबतक आप साधनका आरम्भ कर सकते हैं— भौतिक दर्शनके दृष्टिकोणसे। और जब आप जगत्की सत्ता अस्वीकार करते हैं, तब आप साधन कर सकते हैं— अध्यात्म दर्शनके दृष्टिकोणसे। जब आप प्रभुकी सत्ता स्वीकार करते हैं, तब आप साधन कर सकते हैं— आस्तिक दर्शनके दृष्टिकोणसे। आज दशा क्या है? कि सत्ता स्वीकार करते हैं जगत्की, और प्राप्त करना चाहते हैं भगवान्को।

According to the viewpoint of materialistic philosophy, as long as you accept the reality of the world, you can start spiritual practice. According to the viewpoint of spiritualistic philosophy, as long as you accept the unreality of the world, you can start spiritual practice. According to the viewpoint of theistic philosophy, as long as you accept the reality of God, you can start spiritual practice. The irony of the present human condition is this: *Although we accept the reality of the world; yet we want to realize God!*

176. साधनमें कठिनाई है कहाँ? कठिनाई जहाँ आपको मालूम हो तो समझ लें कि हम अपने मनकी कोई बात पूरी करना चाहते हैं, इसलिये कठिनाई है।



Where is the difficulty in spiritual practice? Wherever you feel difficulty, understand it to be that you want to fulfill some desire of your heart.

177. रोटी खानेमें आप पूरी शक्ति लगा सकते हैं और सच्चाईकी खोजमें आप सोचते हैं— कोई सहज साधन बताइये, कोई सुलभ साधन बताइये। मैं आपसे पूछता हूँ— रोटी खानेके लिये जितना श्रम कर सकते हैं, सत्यकी खोजके लिये उतना क्यों नहीं कर सकते ?

You devote your full energy in eating the food; but for the discovery of truth, you want to find out an easy method, a convenient way! I am asking you that you can put forth effort for eating the food; why can't you do the same for the discovery of truth?

178. जो सत्य किसी आचार्य, पीर, पैगम्बरको मिला, वह सत्य तो आपको मिल सकता है; लेकिन जिस प्रकारसे उनको मिला, उसी प्रकारसे आपको भी मिल जायगा— यह बात गलत है।

The truth that was discovered by any religious teacher, saint, or prophet can be discovered by you as well. But to expect that you will discover it in the same manner as they did this is a wrong notion.

179. यदि साधन है तो प्रत्येक प्रवृत्ति साधन है; नहीं तो भैया, जबतक किसी प्रवृत्ति-विशेषका नाम साधन है और किसी प्रवृत्ति-विशेषका नाम असाधन है, तबतक सब असाधन है।



If there is any method (by way of spiritual practice), then every activity is the method. There is no special activity or effort that is *the* method. As long as you consider some special activity to be either *the* method (*sādhan*) or non-method (*asādhan*), you are essentially practicing non-method (*asādhan*).¹¹

180. दुःखकी बात तो यह है कि जो हम अपने द्वारा कर सकते हैं, उसको नहीं करते और जो शरीरके द्वारा कर सकते हैं, उसीको करनेकी कोशिश करते हैं।

The sad thing is that, what you can do with the help of your “self,” you do not do; and you only try to do that which you can do with the help of your body.

181. आप स्वीकार कीजिये कि ‘प्रभु मेरे हैं’, इससे जीवन प्रभुके लिये उपयोगी सिद्ध हो जायगा। सेवाका व्रत ले लीजिये, तो जीवन जगत्के लिये उपयोगी हो जायगा। अकिंचन और अचाह होनेसे जीवन अपने लिये उपयोगी हो जायगा। यदि आप इन तीनोंमेंसे किसीको भी स्वीकार नहीं करते, तो अनन्त जन्मोंतक आपसे कोई साधन नहीं करा सकता।

You [kindly] accept that ‘God is mine;’ with this, life will prove useful for God. Take a vow of service; with this, life will become useful for the world. By becoming free from objects and desires, life will become useful for our

¹¹This literal translation is a bit “awkward” at best. What Swāmījī seem to clarify is that spiritual practice is not dependent on any particular method or activity. Swāmījī used to say: “The renunciation of *asadhan* is the *sadhan*.”



self. If you do not accept any one of these three [propositions], then no one will be able to help you do the *sādhan* even for endless life-times!¹²

182. यदि भजन करके भगवान्से हम धन, सन्तान आदि कुछ माँगते हैं, तो हमारा साध्य तो वह इच्छित पदार्थ ही हुआ, भगवान् तो उसकी प्राप्तिके साधन हुए।

If we ask for wealth, progeny etc., in return of our worship to God, then our true purpose is verily these desired objects indeed while God is just a “means” to obtain these objects.

183. प्रभुका नाम, प्रभुका काम, प्रभुका ध्यान समान अर्थ रखते हैं।

God's name, God's work, God's meditation are of equal significance.

184. साधन बोझा नहीं है। आज साधकको यह मालूम होता है कि जैसे कोई आदमी रोटी खाकर निश्चिन्त होकर उठता है, वैसे ही जब वह ध्यानसे उठता है तो उसे विश्राम मिलता है अर्थात् जब वह ध्यानमें था, तब उसे विश्राम नहीं था! तो क्या यह भी साधन है कि ध्यानकालमें विश्राम न मिले?

Spiritual practice is not a burden. Today the spiritual aspirant feels that he will experience the same relief (freedom from worry) by spiritual practice (that is, after meditation) as he felt when he got up *after* having a

¹²What is implied here is that one should at least practice one of the three methods for liberation: *BhaktiYōg* (consider that only “God is mine”); *Karma Yōg* (“serve the world”); and *JñānaYōg* (become “detached and desireless”).



meal? Wasn't there repose (*vishrām*) during the period of meditation? Is this then a real spiritual practice if one does not have repose during the meditation period?

185. जिस प्रकार बिना प्राणका शरीर कितना ही सुन्दर क्यों न हो, बेकार होता है, उसी प्रकार व्याकुलतारहित साधन कितना ही उत्तम क्यों न हो, बेकार हो जाता है।

As without the vital breath or life-current (*prāna*) the body is useless, howsoever beautiful it may be; even so, all spiritual practice which is not free from anxiety, howsoever superior it may be, is useless.

186. भगवान्की ओर मन लगाकर काम करना उतना अच्छा नहीं है, जितना अच्छा कामको भगवान्का समझकर करना है।

Doing work and directing your mind towards God is not as good as doing work and considering it as God's work.

187. बाहरी साधनोंमें अपनेको अधिक मत फँसाओ। जहाँतक हो सके, हृदयसे प्रेमपात्रको पुकारो।

Do not entangle yourself with external practices; as far as possible, call your Object of Love from the bottom of your heart.

188. जो प्राणी बाहरी साधनोंमें अपनेको अधिक बाँध लेता है, उसमें साधनका मिथ्या अभिमान आ जाता है। बाहरी साधन निर्बलताओंको ढक देता है, मिटा नहीं पाता। छिपा हुआ साधन बाहरी साधनोंसे कहीं अधिक सबल होता है। छिपा हुआ त्याग तथा प्रेम बढ़ जाता है, छिपी हुई प्रीति सच्ची व्याकुलता उत्पन्न करती है, जो वास्तवमें सच्चा भजन है। किसीने भी बहुमूल्य वस्तुओंको बाहर निकालकर नहीं रखा,



सब छिपाकर ही रखते हैं। अतः प्रीति जैसी अमूल्य वस्तुको हृदयमें छिपाकर रखना चाहिये।

A spiritual aspirant who binds himself too much with external practices ends up having a false pride. External practices may cover one's weaknesses but cannot remove them....A spiritual practice that is kept undisclosed is far stronger. Nobody makes valuable things motley to the public view; rather, they keep them hidden. Similarly, a superior thing like God's Love should be kept concealed in one's heart.

189. साधन कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसमें कभी न करनेकी बात आये। साधन वही है जो स्वभावसे ही निरन्तर होता रहे। यदि साधनमें व्यवधान पड़ता है तो यह समझना चाहिये कि साधनके भेषमें किसी असाधनको अपना लिया है।

Spiritual practice is not such a thing that one should decide to do or not to do. The true spiritual practice is one which continues all the time on its own by our real nature itself (*svabhāva*). If you feel that your spiritual practice is being interrupted, then you should know that you have embraced *asāadhan* under the guise of *sāadhan*.

190. जो साधन जीवनके किसी एक अंशमें प्रतीत होता है, वह वास्तवमें साधनके भेषमें असाधन ही है; क्योंकि साधकका समस्त जीवन साधन है।

A spiritual practice (*sāadhan*) that appears only in one part of one's life is actually *asāadhan* only, under the guise of *sāadhan*. A true spiritual aspirant's whole existence is nothing but a spiritual practice.



191. कामनाको लेकर जो ईश्वरका भजन-चिन्तन किया जाता है, वह कामनाकी पूर्ति होनेपर या न होनेपर ईश्वरसे विमुखता प्रदान करता है।

God's worship that is undertaken to fulfill desire brings estrangement (*vimukhatā*) of God upon the fulfillment or non-fulfillment of desire.

192. आप सुनना और सीखना बन्द करें, और जानना और मानना प्रारम्भ करें, तो काम बन जायगा। जाननेके स्थानपर 'मेरा कुछ नहीं है'— इसके सिवाय और कुछ नहीं जानना है, और माननेके स्थानपर सिवाय परमात्माके और कोई माननेमें आता नहीं है।

The spiritual mission is accomplished when you stop "listening" (*sunanā*) and "learning" (*sīkhanā*) and start "knowing" (*jānanā*) and "accepting" (*mānanā*). What is meant by "knowing?" Only this: "Nothing is mine." What is meant by "accepting?" Only this: "There is nothing except God."¹³

193. अगर आप यह मानते हैं कि सिद्धि {वर्तमानमें} नहीं हो सकती, तो साधन करनेकी क्यों सोचते हैं? आप कहेंगे कि साधन करनेकी तो इसलिये सोचते हैं कि कालान्तरमें, जन्म-जन्मान्तरमें हमको सिद्धि मिलेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि अभी हम असाधन-जनित सुखका भोग करना चाहते हैं।

¹³ Swāmijī hands over all the keys to the spiritual kingdom here: *God is all there is and nothing is mine!* When everything is God or is God's, how can it be mine or anyone else's? *Spiritual instruction does not come any better than this.*



If you believe that spiritual perfection cannot occur in the present, then why do you even bother about engaging in any spiritual practice? You may say that spiritual practice is undertaken with the assumption that it will result in spiritual perfection over time and after many lifetimes. It means that you still want to indulge in the enjoyment of pleasure born of *asādhan*.

194. आप दशासे परिचित होते नहीं, जरूरतसे परिचित होते नहीं, साधनसे परिचित होना चाहते हैं। जो साधन आपकी जरूरतके अनुसार नहीं होगा, जो जरूरत आपकी मौजूदा दशामेंसे नहीं निकलेगी, यह कैसे ठहरेगी आपके जीवनमें! प्यासे आदमीको पानीकी बात सुननेको मिले तो वह फौरन पकड़ लेता है; क्योंकि प्यास लगी है, उसे जरूरत है। पहले आप अपनी मौजूदा हालत देखिये, क्या है? फिर अपनी जरूरत देखिये, क्या है? फिर उपाय पूछिये अपनी जरूरतको सामने रखकर, तो जरूरतका अनुभव होना ही एक बहुत बड़ा उपाय हो जायगा।

You do not want to be familiar with your spiritual condition, necessity, and practice. A spiritual practice which is not according to your spiritual need, and a spiritual need that does not spring from your present condition, how will that sustain and become an integral part of your life? If a thirsty person hears about water, he immediately grasps the matter since he is thirsty; that is, he is in need of water. First assess the state of your present condition. Then find out what your current need is. And ask for the solution while keeping in mind your need. Then just *feeling* the very *need* will *become* the great *solution*.



195. व्यथित हृदयसे इतना ही कह दीजिये कि हे प्यारे, हम आपको अपना मानना चाहते हैं, पर मान नहीं पाते; हम ममता तोड़ना चाहते हैं, पर तोड़ नहीं पाते। व्यथित हृदयसे इतना कहकर मौन हो जाइये। आपको पता भी न चलेगा कि ममता कैसे टूट गयी और आत्मीयता कैसे आ गयी। क्यों? जो करना चाहते हैं आप, चाहते हैं और नहीं कर पाते, तो जो चाहना है, वही करना है और कुछ नहीं करना है।

With distressed heart, just say this only, O Dear [Lord]! I want to regard You as mine, but am not able to; I want to end attachment [or the sense of mine], but am not able to do so. Be still after saying this with the distressed heart. You will not even know when the attachment or the sense of mine has departed and how the self-identity has come about. Why? That which you long to but are not able to, that longing is all that needs to be awakened; there is nothing else that needs to be done.

196. सुख जाता ही है और दुःख आता ही है। इस विधानमें मानवका अमंगल नहीं है, अपितु मंगल ही है।

Happiness¹⁴ is bound to depart; and sorrow is bound to come. In this Divine Dispensation (*vidhān*), there is well-being (*mangal*) of the beings and not lack of their welfare (*amangal*).

197. सब कामोंके अन्तमें सोते समय और सोकर उठते समय एवं जो कोई काम करो, उसके अन्तमें भजन जरूर करना चाहिये। जो मनुष्य हरेक कामके अन्तमें कम-से-कम एक

¹⁴There is no real equivalent of the Hindi word "sukha." It is translated here as "happiness."



बार भी निश्चितरूपसे भगवान्को याद कर लेता है, उसको मरते समय भगवान् जरूर याद आ जायँगे।

At the end of all tasks and at the time of sleep and while getting up from sleep, one must worship God. If a person remembers God in a determined manner at the end of each task at least once, such a person will surely remember God at the time of death.

198. यह नियम है कि जिस कठिनाईको शान्तिपूर्वक सहन कर लिया जाता है, वह कठिनाई स्वयं हल हो जाती है। शान्तिपूर्वक सहन करनेका अर्थ है, अपने दुःखका कारण किसी औरको न मानकर दुःखको सहन कर लेना।

It is a cosmic law that the difficulty which has been endured peacefully and patiently, that difficulty gets resolved on its own. Bearing our sorrow peacefully means to endure sorrow and not to consider anyone else responsible for our sorrow.

199. ऐसा कोई सुख नहीं है, जिसका जन्म किसी दुःखसे न हो और ऐसा भी कोई सुख नहीं है, जिसका दुःखमें अन्त न हो।

There is no pleasure that is not born of some type of pain and there is no pleasure at all which does not end in pain.

200. दुःखी 'त्याग' से और सुखी 'सेवा' से उन्नति करता है।

The sorrowful person makes progress through renunciation (of desire for pleasure) and the happy person makes progress through service.



201. सत्यकी आवाजको किसी व्यक्तिकी आवाज, सत्यके ज्ञानको किसी व्यक्तिका ज्ञान, सत्यके प्रेमको किसी व्यक्तिका प्रेम, सत्यके आनन्दको किसी व्यक्तिका आनन्द और सत्यके सौन्दर्यको किसी व्यक्तिका सौन्दर्य समझना परम भूल है। इस भूलके होनेसे ही व्यक्तियोंसे राग हो जाता है, जो दुःखका मूल है। रागसे दुःख तथा त्यागसे आनन्द अवश्य मिलता है।

It is a great mistake to consider the voice of Truth as someone's "personal" voice of truth; to consider the Knowledge of Truth as someone's "personal" knowledge of truth; to consider the Love of Truth as someone's "personal" love of truth; to consider the Bliss of Truth as someone's "personal" bliss of truth; and to consider the Beauty of Truth as someone's "personal" beauty of truth. Due to this error, one gets attached to persons which is the root cause of sorrow. Attachment begets sorrow and renunciation indeed leads to bliss.

202. सुखकी आशासे मिलना अलग होनेकी तैयारीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

To meet with the expectation of pleasure is nothing but a preparation for separation.

203. दुःखीका दुःख उसी समयतक जीवित है, जबतक अभागा दुःखी दुःखको संसारकी सहायतासे मिटाना चाहता है। संसारसे निराश होते ही दुःखहारी हरि दुःखको स्वयं हर लेते हैं।

The sorrow of the sorrowful is alive only till the unfortunate person tries to eradicate sorrow with the



help of the world. As soon as a person is disappointed in the world, God, the destroyer of sorrows, takes away the sorrows.

204. आपके निज स्वरूपमें अपार आनन्द छिपा है, जो दुःखकी कृपासे मिलेगा, सुखकी कृपासे नहीं।

Within your real Self (*nij-svarūpa*) is hidden boundless bliss which is realized by the benevolence of the sorrow, and not by the benevolence of the pleasure.

205. निरन्तर अखण्ड प्रसन्न रहनेका स्वभाव बनाओ। ज्यों-ज्यों प्रसन्नता बढ़ती जायगी, प्रतिकूलता लज्जित होकर हटती जायगी। प्यारे, प्रसन्नताकी ओर सभी देखते हैं; अतः सारा विश्व आपकी ओर देखेगा। दुःखीकी ओर दुःखहारीके अतिरिक्त और कोई नहीं देखता।

Develop the habit of being continually happy. As the joy will increase, adverse conditions will keep on decreasing. Everyone looks towards happiness; so, the whole world will look towards you. Nobody looks towards the sorrowful except the remover of the sorrows. [God is the *remover* of sorrows]

206. हृदयहीन हुए बिना, बेईमान हुए बिना, अपना मूल्य घटाये बिना और पराधीन हुए बिना कोई आदमी सुख नहीं भोग सकता।

No one can indulge in sense-gratification without being heartless, dishonest, without lessening one's self-value, and without being dependent.

207. सुखके भोगीसे प्राणिमात्र भयभीत हो जाता है; क्योंकि हिंसा तथा प्रमादके बिना सुखभोगकी सिद्धि ही नहीं होती।



All beings become afraid of the one who indulges in sense gratification since, without violence and indifference, sense indulgence is not possible.

208. योग प्राप्त होनेपर जबतक 'हम योगी हैं', तबतक योगके भोगी हैं। और ज्ञान प्राप्त होनेपर जबतक 'हम ज्ञानी हैं', तबतक ज्ञानके भोगी हैं। और प्रेम प्राप्त होनेपर जबतक 'हम प्रेमी हैं', तबतक हम प्रेमके भोगी हैं। और भाई, जो प्रेमका भोगी है, वह कभी-कभी 'काम' का भोगी हो सकता है। और जो ज्ञानका भोगी है, वह कभी-कभी 'अज्ञान' का भोगी हो सकता है। और जो योगका भोगी है, वह कभी-कभी 'भोग' का भोगी हो सकता है।

On the attainment of *Yōg*, as long as we think 'we are *Yōgī*,' we are verily *bhōgī* of *Yōg*. And on the attainment of *jñāna*, as long as we think 'we are *jñāni*,' we are verily the *bhōgī* of *jñāna*. On the attainment of *Prem*, as long as we think 'we are *premi*,' we are *bhōgī* of *prem*. He who is *bhōgī* of *prem* can also sometime become the *bhōgī* of lust (*kām*). And he who is *bhōgī* of *jñāna* can also sometime become the *bhōgī* of *ajñāna*. And he who is *bhōgī* of *yōg* can also sometime become the *bhōgī* of the *bhōg*.

209. अगर आपकी कोई शारीरिक सेवा करेगा तो आप उसका उपकार इसलिये नहीं मानते कि उसने सेवा की है, आप इसलिये मानते हैं कि शरीरको आपने अपना माना है। ऐसे ही सेवा करनेवाला आपपर एहसान करता है तो समझिये कि वह सेवा नहीं करता। वह परमात्माकी दी हुई वस्तुको अपनी मानकर, बेईमान बनकर संसारमें मिथ्या अभिमान करता है।



If someone were to serve your body, you will not be grateful to him because he has done service to you; you will be grateful because you consider your body as yours. Similarly, if the person doing the service does it as a big favor to you, understand that that person did not do any service. Such a person considers the gifts bestowed by God as his personal gifts, in a dishonest manner, and takes false pride in the objects of the world.

210. सेवा वह तत्व है, जिसका हल्के-से-हल्का बोझ भी सेव्यपर न जाय।

Service is that pure element of reality of which even the slightest burden does not get passed on to the served.

211. यदि हमारी की हुई सेवा हमारे जीवनमें पद-लोलुपता तथा जिनकी सेवा की है, उनसे किसी प्रकारकी आशा उत्पन्न कर देती है तो समझना चाहिये कि हमने सेवाके नामपर किसी अपने स्वार्थकी ही सिद्धि की है। ऐसी सेवा तो वह बुराई है, जो भलाईका रूप धारण करके आती है।

If the service that we have rendered creates a sense of importance in our life and creates any expectation from those served, then we should understand that, under the pretext of service, we have fulfilled our selfish motive only. Such service is a form of evil that comes under the guise (or in the form) of good.

212. 'सेवा' माने हुए सम्बन्धको तोड़नेमें और 'प्रेम' जिससे जातीय एकता है, उससे अभिन्न करनेमें समर्थ है।

Service is capable of *severing* the assumed relationship (with objects) and in making us one with that Love with which we have identity of self (*jātiyey-ékata*).



213. सेवाका मूल्य प्रभु देता है, संसार नहीं दे सकता।

The Lord grants the reward of our service; the world cannot grant it.

214. जो स्वयं दुःखी है, वह सेवा नहीं कर सकता, किन्तु 'विचार' कर सकता है। बेचारे सुखी प्राणीमें सुखान्शक्तिके कारण विचारका उदय नहीं होता, प्रत्युत वह 'सेवा' कर सकता है।

A person who is suffering cannot serve, but he can exercise *viveka* (i.e., he can discriminate between the real and the unreal, between the permanent and the transient). Due to attachment with pleasure, sense of discrimination (*viveka*) does not arise in a person who is happy. However, such a person can perform service (*sevā*).

215. तुम अपनी दशा मत देखो, अपितु अपने स्वरूपको देखो। भला तुम तक कभी भी सृष्टि पहुँच सकती है? कदापि नहीं।

Do not pay attention to your condition; rather, look at your real nature (*svarūpa*). Can the visible world (*sṛṣṭī*) ever touch your real nature? Never, ever!

216. अपने लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता कदापि नहीं हो सकती; क्योंकि भिन्नतासे एकता होनी सर्वथा असम्भव है।

One cannot need for oneself what is essentially different from oneself because there can never be oneness in the difference.

217. स्वाधीनताका अर्थ ही यह है कि आप जब स्वाधीनता पसन्द करेंगे तो शरीरकी भी आप आवश्यकता अनुभव नहीं करेंगे।

Independence means that when you choose



independence, you will not even feel the need for the body.

218. जो हो रहा है, वह सभीके लिये हितकर है, पर जो कर रहे हैं, उसीपर विचार करना है।

Whatever is happening is favorable for everyone. Our task is only to think about what we are doing.

219. जिस व्यक्तिको अपनी प्रसन्नताके लिये दूसरोंकी ओर देखना नहीं पड़ता, उसीका जीवन स्वाधीन जीवन है।

Only that person's existence is independent (self-dependent) who does not have to look towards others for his joy and happiness.

220. भूतकालको भूलकर, भविष्यकी आशाको छोड़कर और वर्तमानकी आवश्यक नियमानुसार क्रियाओंसे असंग हो जानेपर आत्मानुभव अवश्य होगा।

One will surely experience or realize one's Self by forgetting the past, relinquishing the need for the future, and by being properly detached from the actions of the present.

221. जो बिना सीखे हो, वही सच्चा 'ज्ञान' है अर्थात् स्वभावतः आ जाय। जो बिना हेतुके हो, वही सच्चा 'प्रेम' है। और जो बिना किये हो, वही सच्चा 'त्याग' है; क्योंकि सच्चा त्याग करना नहीं पड़ता, हो जाता है।

That, which manifests itself spontaneously, without having to be learnt, is true Knowledge. That, which is motiveless, is true Love. That, which happens without any special effort on our part, is true renunciation. The true renunciation does not have to be performed, it happens.



222. हमारे मत, सम्प्रदाय, विचारधारा आदिका विरोध सिद्धान्तरूपसे नहीं होता, अपितु हमारा दोषयुक्त जीवन ही हमारे सिद्धान्तोंका विरोध करानेमें हेतु है। हम अपने सिद्धान्तोंकी महिमाका वर्णन करके उनका प्रचार चाहते हैं, पर वास्तविक प्रचार तो उन सिद्धान्तोंका होगा, जिनका चित्र हमारे जीवनमें दिखवायी देता है।

Our belief system, tradition, and viewpoint are not opposed on their principles; however, our flawed life alone is responsible for opposing our principles. We try to spread our principles by proclaiming their great significance; however, only those principles will truly become popular which are enshrined in our life or which are reflected in our conduct of life.

223. दूसरोंके सुधार एवं सिखानेकी बात सीमित गुणोंका अभिमान एवं अपनी योग्यताका परिचय देना है।

[The firewood burns other firewood by burning itself. It does not teach the other firewood how to burn.] Attempt to teach or reform others only means giving proof of pride in one's limited qualities and qualification.

224. मौनका अर्थ खाली चुप होना नहीं है, बल्कि न सोचना भी है, न देखना भी है अपनी ओरसे। मुझे जो चाहिये, सो तो मुझमें है, फिर इन्द्रियोंकी क्या अपेक्षा? मौनके पीछे एक दर्शन है कि हमको जो चाहिये, वह अपनेमें है, अपना है और अभी है।

Stillness or silence does not mean to be merely quiet. It also means not to think, not to see from our side. Whatever I need, I do have that within me; then, why do



I require the senses? There is a philosophy behind stillness that whatever we need, is within us, is ours, and is [attained or is there even] right now.

225. हम थोड़ी देरके लिये, दो, चार या दस मिनट, इससे ज्यादा नहीं, बिना कोई काम करे अकेले रहनेका स्वभाव बनायें। यह कोशिश करें कि दस मिनटतक हम कोई काम नहीं करेंगे, अकेले रहेंगे, बिना सामान और बिना साथीके रहेंगे, शरीरको लेकर नहीं। हमें जो अपने बहुत-से साथी मालूम होते हैं, बहुत-सा सामान मालूम होता है, उसके बिना रहेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम साथियोंको नाराज कर दें या सामानको बरबाद कर दें। ऐसा मेरा मतलब नहीं है। लेकिन थोड़ी देरके लिये ऐसा अनुभव करें कि मान लो, हमारे पास हमारा शरीर भी नहीं रहेगा, तब हम होंगे कि नहीं? ऐसा प्रश्न अपने सामने रखें।

Develop the habit of being alone without doing anything for some time say, not more than two, four or ten minutes. For ten minutes, practice *not to do anything*; remain alone, without any objects or companions without the body-sense. During this practice, we will live without lots of companions and lots of objects that we consider our own. It does not mean that we will upset our companions and destroy the objects. That is not what is intended here. Try to experience this in your mind for a little while: Assume for a minute if we did not have our body; will we still exist or not? Keep this question in front of you.

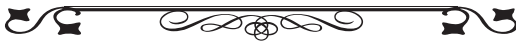


226. अगर हम थोड़ी-थोड़ी देरके लिये विश्राम करनेका स्वभाव बना लें, अकेले होनेका स्वभाव बना लें, तो हमें अपनेमें ही, कहीं बाहर नहीं, प्रीतमकी प्राप्ति हो जायगी।

If we develop the habit of repose for little durations of time the habit of being alone we will realize our Beloved, not anywhere outside, but within our own self.

227. राग-रहित होनेपर 'योग' की प्राप्ति होती है और द्वेष-रहित होनेपर 'प्रेम' की अभिव्यक्ति होती है।

One attains to 'Yōg' (communion) and 'Prem' (love) by becoming free from attraction and aversion respectively.



हे मेरे नाथ! सभी आपको भूलें नहीं।

O My Lord! May we all not forget Thee!

जब शास्त्र के नाम पर, परमात्मा के नाम पर आने वाली पीढ़ी भटकेगी तो परमात्मा का नाम लिए बिना मनुष्यता की और किसी धर्म विशेष का नाम लिए बिना धर्म की प्रतिष्ठा कर देना शरणानन्दजी की अपनी विशिष्टता है।



Collected Works of Sharnānandjī Mahārāj: *A Suggested Schema*

Collected Works Volume 1: Early Essential Writings

Prabodhani: Sharnānandjī Mahārāj: Ek Paricheyey

सत्संग और साधन (1959) Satsaṅg aur Sādhan

दर्शन और नीति (1960) Darshan aur Nīti

जीवन पथ (1960) Jīvan-Patha

दुःख का प्रभाव (1961) Duhkha kā Prabhāv

मानवता के मूल सिद्धान्त (1961) Mānavtā Ke Mūla Siddhānt

मूक सत्संग और नित्य योग (1963) Mook Satsaṅg aur Nitya Yōg

Collected Works Volume 2: Early Essential Writings

साधन तत्त्व Sādhan-Tattva

मानव की माँग Mānav Kī Māṅg

मानव दर्शन Mānav-Darshan

साधन निधि (1964) Sādhan-Nidhi

मंगलमय विधान (1964) Mangalmeya Vidhān



Collected Works Volume 3: Authoritative Writings (Transcriptions)

- सन्त वाणी भाग-1 (सफलता की कुंजी) Sant Vānī Part-1 (Safaltā kī Kungī)
सन्त वाणी भाग-2 (कैसेट सं. 1 से 6 तक) Sant Vānī Part-2
सन्त वाणी भाग-3 (कैसेट सं. 7 से 12 तक) Sant Vānī Part-3
सन्त वाणी भाग-4 (कैसेट सं. 13 से 22 तक) Sant Vānī Part-4

Collected Works Volume 4: Authoritative Writings (Transcriptions)

- सन्त वाणी भाग-5 (क) (कैसेट सं. 23 से 27 तक) Sant Vānī Part-5A
सन्त वाणी भाग-5 (ख) (कैसेट सं. 28 से 32 तक) Sant Vānī Part-5B
सन्त वाणी भाग-6 (कैसेट सं. 33 से 37 तक) Sant Vānī Part-6
सन्त वाणी भाग-7 (कैसेट सं. 38 से 42 तक) Sant Vānī Part-7
सन्त वाणी भाग-8 Sant Vānī Part-8

Collected Works Volume 5: Inspired Writings

- सन्त समागम भाग-1 Sant-Samāgam-1
सन्त समागम भाग-2 Sant-Samāgam-2
सन्त समागम भाग-3 Sant-Samāgam-3
सन्त सौरभ (सन्त वाणी) Sant Saurabh (Sant Vānī)
सन्त उद्बोधन Sant-Udbodhan



Collected Works Volume 6: Philosophical Writings

(Mānav Manovigyan)

जीवन दर्शन भाग-1	Jīvan-Darshan Part-1
जीवन दर्शन भाग-2	Jīvan-Darshan Part-2
चित्त शुद्धि भाग-1	Chitt-Shuddhī-1
चित्त शुद्धि भाग-2	Chitt-Shuddhī-2

Collected Works Volume 7: Spiritual Letters

पाथेय भाग-1	Pāthyey Part-1
पाथेय भाग-2	Pāthyey Part-2
सन्त पत्रावली भाग-1	Sant Pattrāvalī Part-1
सन्त पत्रावली भाग-2	Sant Pattrāvalī Part-2
सन्त पत्रावली भाग-3	Sant Pattrāvalī Part-3

Collected Works Volume 8: Miscellaneous Compilations

मानव सेवा संघ का परिचय-आचार संहिता सहित	Mānav Sevā Saigh Ka Parichyey
सन्त जीवन दर्पण	Sant Jīvan Darpan
साधन त्रिवेणी	Sādhan-Trivenī
प्रश्नोत्तरी (सन्त वाणी)	Prashnotrī (Sant Vānī)
प्रेरणा पथ	Preranā Patha
प्रार्थना तथा पद	Prārthanā aur Pada
मैं की खोज	Mein Kī Khōj
पथ प्रदीप	Patha Pradeep



Collected Works Volume 9: Divya Jyoti Devakiji

जीवन विवेचन भाग-1 (क)	Jivan Vivechan Part-1 (A)
जीवन विवेचन भाग-1 (ख)	Jivan Vivechan Part-1 (B)
जीवन विवेचन भाग-2	Jivan Vivechan Part-2
जीवन विवेचन भाग-3	Jivan Vivechan Part-3
जीवन विवेचन भाग-4	Jivan Vivechan Part-4

Collected Works Volume 10: Divya Jyoti Devakiji

जीवन विवेचन भाग-5	Jivan Vivechan Part-5
जीवन विवेचन भाग-6 (क)	Jivan Vivechan Part-6 (A)
जीवन विवेचन भाग-6 (ख)	Jivan Vivechan Part-6 (B)
जीवन विवेचन भाग-7 (क)	Jivan Vivechan Part-7 (A)
जीवन विवेचन भाग-7 (ख)	Jivan Vivechan Part-7 (B)



श्री महाराज जी के साहित्य सागर में से
विषयानुसार गंभीरतापूर्वक मनन-विचार करने योग्य
ढाई हजार से अधिक अमूल्य वचनों का संग्रह
'क्रान्तिकारी सन्तवाणी' पुस्तक में उपलब्ध है ।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामीजी श्री शरणानन्दजी महाराज का अनमोल साहित्य

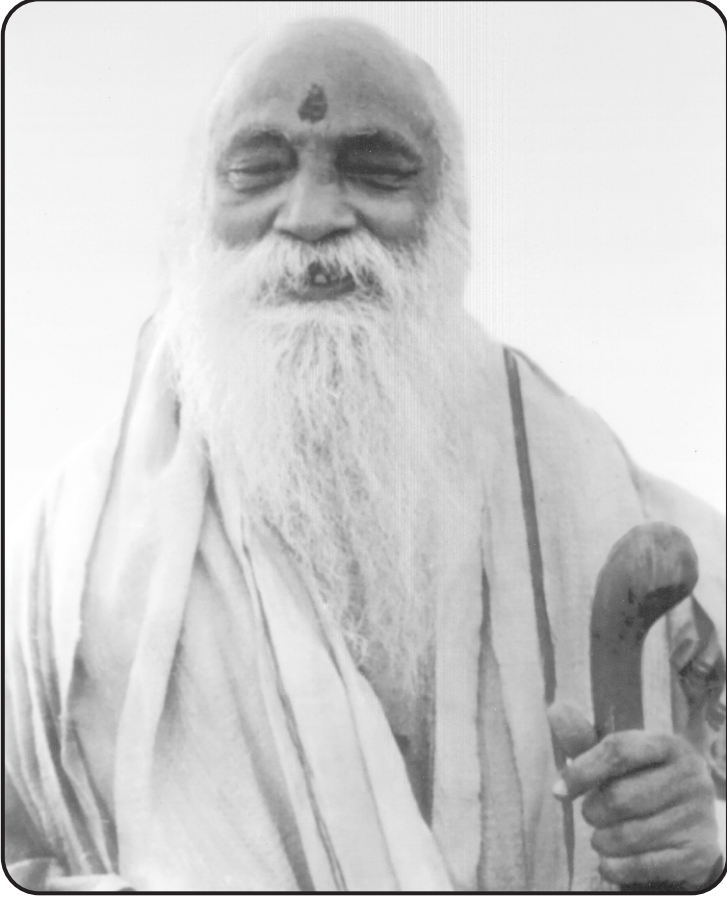
- | | |
|---------------------------------------|--------------------------------------|
| 1. सन्त समागम भाग-1 से 3 | 19. दुःख का प्रभाव |
| 2. सन्त वाणी भाग-1 से 8 | 20. मंगलमय विधान |
| 3. प्रश्नोत्तरी (सन्त वाणी) भाग-1 व 2 | 21. जीवन विवेचन भाग-1 से 7 |
| 4. सन्त सौरभ (सन्त वाणी) | 22. सन्त जीवन दर्पण |
| 5. सन्त उद्बोधन | 23. मानव सेवा संघ का परिचय |
| 6. प्रेरणा पथ | 24. साधन निधि |
| 7. सन्त पत्रावली भाग-1 से 3 | 25. पाथेय भाग-1 व 2 |
| 8. जीवन दर्शन भाग-1 व 2 | 26. पथ प्रदीप |
| 9. चित्त शुद्धि भाग-1 व 2 | 27. प्रार्थना तथा पद |
| 10. जीवन पथ | 28. मैं की खोज |
| 11. मानव की माँग | 29. क्रान्तिकारी सन्तवाणी |
| 12. मानव दर्शन | 30. सन्त हृदयोद्गार |
| 13. मूक सत्संग और नित्य योग | 31. रजत स्मारिका |
| 14. मानवता के मूल सिद्धान्त | 32. Ascent Triconfluent |
| 15. सत्संग और साधन | 33. A Saint's call to Mankind |
| 16. साधन तत्त्व | 34. Sadhna Spot light by a Saint |
| 17. साधन त्रिवेणी | 35. Revelation of the Spiritual Path |
| 18. दर्शन और नीति | 36. Pathway to Life |

Published and Potential other books

- | | |
|--------------------------------------|-------------------------------|
| 1. मानवमात्र के शरणानन्दजी | 10. भूक सत्संग तथा नित्ययोग |
| 2. यह नियम है कि- (हिन्दी-English) | 11. सत्संग अने साधन |
| 3. Sant Hridayōdgār (हिन्दी-English) | 12. दर्शन अने नीति |
| 4. Krāntikārī Santvānī | 13. चित्त-शुद्धि - भाग 1 |
| 5. Prashnōttarī | 14. चित्त-शुद्धि - भाग 2 |
| 6. Sant Jivan Darpan | 15. क्रांतिकारी संतवाणी |
| 7. Humanity's own Sharnānandji | 16. संत हृदयोद्गार |
| 8. मानवमात्रना शरणानंद | 17. तरुतले भाग-1 से 3 (जयपुर) |
| 9. साधन निधि | 18. साधन-सूत्र (लखनऊ) |



हरिः शरणम् !



अनन्त के सखा, मानवता के मसीहा, ब्रह्मनिष्ठ, क्रान्तदर्शी, प्रज्ञा-चक्षु संत शिरोमणि

स्वामी शरणानन्दजी महाराज

स्वामीजी पुस्तकों में अपना नाम तथा चित्र प्रकाशित करने के लिए कभी अनुमति नहीं देते थे। परंतु देश, काल, परिस्थिति परिवर्तन तथा कुछ व्यावहारिक कारणों से उनका नाम तथा चित्र दिया गया है।

अब इन्टरनेट पर भी सत्संग का लाभ लें
कभी भी! कहीं भी!!

www.swamisharnanandji.org

श्री शरणानन्दजी महाराज के
प्रवचन सुनें-साहित्य पढ़ें

विश्व-शांति, दुःख-निवृत्ति तथा मानव-कल्याण के लिये आवश्यक

मानवता के मूल सिद्धान्त

1. आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना ।
Self-observation or seeing one's own faults in the light of the intrinsic faculty of discriminative wisdom (*viveka*).
2. की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना ।
Resolving not to repeat any mistakes committed previously and praying with a simple faith.
3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर, अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर ।
Applying discriminative wisdom regarding oneself and faith regarding others; that is, applying justice for oneself and love and forgiveness for others.
4. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवत् चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण ।
Transforming one's own moral character by restraint of senses, selfless service, contemplation of God, and search for Truth.
5. दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल, न मानना ।
Not considering others' duties as one's own right; others' generosity as one's own goodness; and others' weakness as one's own strength.
6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता ।
Despite having no family or societal ties with others, to have mutual interaction and benevolence in accordance with the sentiment of family; that is, to have the unity (universality) of affection despite the diversity of actions.
7. निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति, क्रियात्मक रूप से सेवा करना ।
Serving through actions those close to oneself to the best of one's capability.
8. शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन ।
Practicing moderation and self-restraint in diet and living habits and self-reliance in daily tasks.
9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान-शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना ।
Embellishing one's personality by making the body hard-working, the mind disciplined, the intellect discerning, the heart loving, and the ego pride-less.
10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना ।
Regarding the objects as more important than money, the people as more important than objects, the discriminative wisdom as more important than people, and the Truth as more important than discriminative wisdom.
11. व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्वल बनाना ।
Making the future bright by giving up useless worrying and by making proper use of the present.

(विस्तृत व्याख्या के लिए श्री शरणानंदजी महाराज की 'मानवता के मूल सिद्धान्त' पुस्तक देखें ।)

The teachings should be free from the taint of any ideological and sectarian facons so that Hindus, Muslims, Christians can derive benefit from it all.

I have a profound relationship with the composer of the Gītā. He is my great friend. I have a great respect for the Gītā. I respect the Gītā a lot; since it is my friend's conversation.

- Santvani 7 / 169

O Lord! (Ya Allah, Ya Khuda)! Let no one understand that Sharnānand has some particular religion or sect. That which is God's is verily Sharnānand's.

- Sant Jīvan Darpan / 97

Jesus is the son of God and I am God's friend; Jesus is thus my real nephew. I know him very well; Jesus is very dear to me.

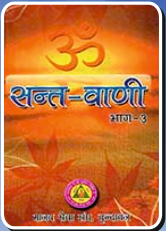
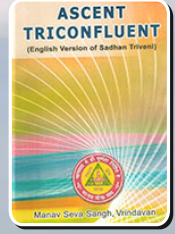
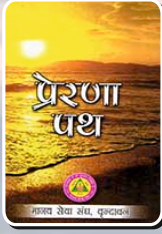
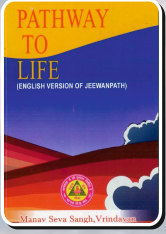
- Santvani 2 / 12



The Creator of the universe-- to establish that Sharnānandjī Mahārāj's irrefutable, revolutionary stream of thought is equally beneficial to Hindu, Muslim, and Christian-- supremely aligned his *Nirvāna-divas* (25-12-1974) in such a manner that *Gītā-Jayantī*, *Īd*, and Christmas was on the same day!

- Santvani 2 / 12

When the future generations will go astray in the name of God and scriptures, then Sharnānandjī's glory will shine in establishing the supremacy of Divinity in Humanity without mentioning the name of God and in establishing the glory of spirituality without mentioning a particular religion.



मैं तो मानव सेवा संघ के मंच को ऐसा मानता हूँ कि जहाँ पर एक अंग्रेज, एक अमेरिकन, एक रशियन, एक हिन्दू, एक बौद्ध, विभिन्न देशों, विभिन्न मतों के लोग एक साथ बैठे और जीवन के शुद्ध सत्य पर विचार कर सकें- इस मंच को ऐसा सुरक्षित रखना है। इस मंच के माध्यम से किसी एक-देशीय साधना की चर्चा कभी नहीं की जाएगी।

(जीवन विवेचन - भाग 2 / पृष्ठ 42, 44)

'I regard the dais of Mānav Sevā Sangh such on which a Briton, an American, a Russian, a Hindu, a Buddhist, and people from different nations and different sects can sit together and ponder over the great truths of life - This dais has to be safeguarded in such a manner. Some one-sided discussion will never occur through the medium of this dais.'

- Swāmī Sharnānandji

